ISSN No : 2583-3855
anuswaar@gmail.com

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता आवेदन

सदस्यता आवेदक का नाम ______________________________

पूरा पता पिन कोड सहित ______________________________

ईमेल आईडी व ____________________ फोन नम्बर ____________________

तारीख ____________________

हस्ताक्षर

मूल्य :

सामान्य प्रति : **150 रुपये**,

वार्षिक मूल्य : **600 रुपये**,

द्विवार्षिक मूल्य : **1000 रुपये**

आजीवन सदस्यता : **6000 रुपये**

भुगतान के लिए :

IndiaNetbooks Pvt. Ltd.

RBL Bank, Noida

A/c No : 409001020633

IFSC : RATN0000191

अनुस्वार

वर्ष : 4 मूल्य : 150/– त्रैमासिक (संयुक्तांक : 16–17) अक्टूबर–मार्च 2025

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
गिरीश पंकज

डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

अतिथि संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय / संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू–एम–28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032

वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार** : मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्रा : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 600 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 1000 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें 9873561826/9810066431 पर व्हाट्सअप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित और बालाजी ऑफसेट, (न्यू–एम–28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा–110032, से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

- **संपादकीय** 7
- **आत्मकथा** 13
  - ➢ जीवन ने जो सिखाया, कलम ने अपनाया! — डॉ. दामोदर खड़से 13
- **चिंतनधारा**
  - ➢ अंतरानुभूति का रूपायन
  - ➢ (संदर्भः श्री दामोदर खड़से का कविता–संग्रह 'अतीत नहीं होती नदी' विषेष) — आनंदप्रकाष दीक्षित 17
  - ➢ दामोदर खड़से : जैसा मैंने देखा — शंकर पुणतांबेकर 27
  - ➢ साहित्य के श्रीमंत जागते रहें ऐसे ही — बलराम 31
  - ➢ "शब्दों का सत संग"–डॉ. दामोदर खड़से — डॉ. सुनील केशव देवधर 36
  - ➢ अंतर्सत्य को उद्घाटित करतीं: चित्रा मुद्गल — डॉ. दामोदर खड़से 40
  - ➢ अंधेरी सुरंग से गुजरता लोक... — डॉ. दामोदर खड़से 44
  - ➢ जीवन की नई उद्भावनाओं से परिपूर्ण दामोदर खड़से का एक विरल उपन्यास 'बादल राग'। — सन्तोष खन्ना 51
- **पुस्तक समीक्षा**
  - ➢ ढाई आखर और भ्रष्टाचार का बादल राग — प्रेम जनमेजय 56
  - ➢ मैं कवि हूँ, क्या यह व्यंग्य नहीं... ! — डॉ. दामोदर खड़से 65
- **संवाद**
  - ➢ डॉ. दामोदर खड़से से डॉ. संजीव कुमार का संवाद 69
- **कथा / कहानी**
  - ➢ तेंदुआ — दामोदर खड़से 76
  - ➢ इमली चाची — महेश कुमार केशरी 82
  - ➢ भूत — डॉ. संजीव कुमार 86
- **कविताएँ / गज़ल**
  - ➢ **दामोदर खड़से की कविताएँ** **90**
    - ☞ तुम लिखो कविता 90
    - ☞ असफलता 90

- ☞ परिधि 90
- ☞ आसार 90
- ☞ अब वहाँ घोंसले हैं 91
- ☞ लौट आओ तुम 91
- ☞ उम्मीद 92

➢ **डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ** **93**
- ☞ बीता वर्ष 93
- ☞ अस्त–व्यस्त 93
- ☞ ठहराव 94
- ☞ बस का सफर 94
- ☞ ख़ामोशी 94

➢ **राजा खुगशाल की बाल कविताएँ** **95**
- ☞ छुपम–छुपाई 95
- ☞ मेला 95

➢ **डॉ. श्याम सखा की कविताएँ** **96**
- ☞ साधारण की व्यथा 96
- ☞ स्वास्थ्य साहित्य 98
- ☞ भारतीय पौराणिक कथाएँ एवं आधुनिक विज्ञान 98
- ☞ डॉ.एस.एस. मुद्गिल 98

● **विवि साहित्य**

➢ क्या भारतीय संविधान के पुनर्लेखन की आवश्यकता है?: एक विस्तृत विश्लेषण — डॉ. संजीव कुमार 103

● **साहित्य समाचार**

➢ रंगकर्मी आलोक शुक्ला के नये नाट्य संग्रह का NSD में हुआ लोकार्पण 106

● **अंततः**

➢ साहित्य और अनुवाद की मेरी व्यायामशाला — प्रेम जनमेजय 107

संपादकीय

सोपान दर सोपान अनुस्वार अपनी साहित्यिक यात्रा में अग्रसर हो रही है। इसमें आपका सहयोग, आपके सुझाव हमारा मार्गदर्शन करते हैं। पिछले अंकों में हमने आपको विशिष्ट व्यक्तित्व स्तंभ में चित्रा मुद्गल, ममता कालिया, डॉ. रामदरश मिश्र, प्रेम जनमेयजय, प्रताप सहगल आदि प्रख्यात साहित्यकारों से रूबरू करवाया, जिसे आपकी प्रेमभरी सराहना प्राप्त हुई और हमारे प्रयासों को आपके प्रेम का उपहार प्राप्त हुआ।

जैसा कि आप जानते हैं कि अनुस्वार के कलेवर में एक विशिष्ट व्यक्तित्व को हम प्रत्येक अंक में स्थान देते हैं। जिससे संबंधित साहित्यकार के संवाद के साथ उसके रचनाक्रम का उल्लेख करते हैं और विभिन्न साहित्यकारों के द्वारा लिखे गये उनके व्यक्तित्व और रचनाकार से संबंधित लेख प्रस्तुत करते हैं। जो साहित्यकार के बारे में एक शोधपूर्ण सामग्री होती है और हमारे पाठकों और शोधकर्ताओं को सरलता से प्राप्त होती है।

इस शृंखला के प्रस्तुत अंक में श्री दामोदर खड़से के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया। पुणे निवासी श्री दामोदर खड़से बहुविधा साहित्यकार हैं और कविता, कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में बराबर का दखल रखते हैं। उन्हें केंद्रीय साहित्य एकादमी सहित अनेकों संस्थानों ने महत्वपूर्ण पुरस्कारों से अंलकृत किया है। वे महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य एकादमी के साथ भी जुड़े हुये हैं।

इलाहाबाद में 144 वर्षों के बाद महाकुंभ की तैयारी चल रही है। जनवरी–फरवरी में विश्व के इस महान आयोजन में 40 करोड़ लोगों के शामिल होने की संभावना है। इसी प्रकार फरवरी के प्रथम माह में विश्व पुस्तक मेला का आयोजन में अनुसूचित है। ये आयोजन साहित्य का महाकुंभ कहा जाता है।

अनुस्वार में समकालीन एवं महत्वपूर्ण विषयों पर साहित्यक लेख प्रस्तुत किये जाते हैं। आपसे अनुरोध है कि उपरोक्त संदर्भ में अपने विद्वतापूर्ण आलेख भेज सकते हैं। जैसा कि आप सबको ज्ञात है विशिष्ट व्यक्तित्व से जुड़ी सामग्री के साथ–साथ स्थायी स्तंभों में भी यथा संभव सामग्री प्रस्तुत की जाती है। इनमें मिर्ची के रंग (व्यंग्य स्तंभ), स्वास्थ्य साहित्य, विधि साहित्य, कविता, कहानी, पुस्तक समीक्षा, साहित्य समाचार आदि स्तंभों में उपलब्ध सामग्री प्रस्तुत की जाती है। हमें आशा है कि पाठकों को यह अवश्य पसंद आती होगी। यदि इस संबंध में कोई सुधार अपेक्षित हो तो आपके सुझाव आमंत्रित है।

व्यंग्य शृंखला के अंतर्गत इंडिया नेटबुक्स ने 8 पुस्तकों, व्यंग्य का व्याकरण, व्यंग्य का मनोविज्ञान, आधुनिक व्यंग्य के तत्व, व्यंग्य शास्त्र, व्यंग्य का वैश्विक परिदृश्य, व्यंग्य पर व्यवस्थाओं का प्रभाव, व्यंग्य की समालोचना को सिद्धांत, व्यंग्य साहित्य का इतिहास का प्रकाशन किया है। इन पुस्तकों में व्यंग्य के सैद्धांतिक पक्षों को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है, जो कि शोधार्थियों पाठकों, व्यंग्यकारों के लिए आवश्यक अध्ययन सामग्री सिद्ध होगी।

इसी प्रकार "कथामाला" शृंखला में अब तक विशेष कहानीकारों की 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और "कवि के मन" से शृंखला में 20 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन पूरा कर लिया गया है। कालजयी कहानियों की शृंखला में मन्नू भंडारी की कहानियों का संकलन शीघ्र ही आने वाला है। इस शृंखला में भारतेन्दु काल से समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ प्रस्तुत किये जाने की योजना है। लघुकथा सागर शृंखला भी शनैः शनै अपनी गति बढ़ा रही है। अपनी प्रकाशन योजना में इंडिया नेटबुक्स ने बाल साहित्य पर भी पर्याप्त काम किया है अब तक लगभग 200 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया है।

"बीपीए फाउंडेशन" एवं इंडिया नेटबुक्स द्वारा प्रतिवर्ष की तरह दिये जाने वाले सम्मान एवं पुरस्कार घोषित कर दिए गये हैं। संबंधित विज्ञप्ति पत्रिका के अंत में दी गई है। इस वर्ष के शिखर पुरस्कार गिरीश, पंकज, हरीश नवल, दिविक रमेश एवं संतोष श्रीवास्तव को दिए गए हैं। क्षेत्रीय भाषाओं में यह पुरस्कार सीपी देवल, केशु भाई देसाई, यू.जी. ब्रह्म को दिये गये हैं। इसके साथ ही 22 साहित्य विभूषण सम्मान, 30 साहित्य भूषण सम्मान, 95 साहित्य रत्न सम्मान, 3 कथा बिंब पुरस्कार, 2 अनुस्वार रत्न पुरस्कार एवं 2 बीपीए सम्मान रत्न पुरस्कार, 6 कला रत्न पुरस्कारों के साथ दिये जायेंगे। इन पुरस्कारों को वितरित करने का कार्यक्रम 1 मार्च 2025 को किया जाएगा।

कथाबिंब के अधिग्रहण के साथ ही एक और पत्रिका के अधिग्रहण की योजना है। उसके संबंध में उचित समय पर सूचना दी जायेगी। इसके साथ ही इंडिया नेटबुक्स समूह की चार पत्रिकाएँ हो जाएँगी। आप सबका अवदान कहानी, कविता, आलेख समीक्षा और साहित्य समाचारों आदि के रूप में आमंत्रित है। हम हिंदी की प्रगति एवं समृद्धि के लिये अनवरत कार्य करने के लिये प्रतिबद्ध हैं।

इन्हीं शब्दों के साथ अनुस्वार का 16वाँ अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

आपकी टिप्पणियों और सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. संजीव कुमार

आवरण-कथा

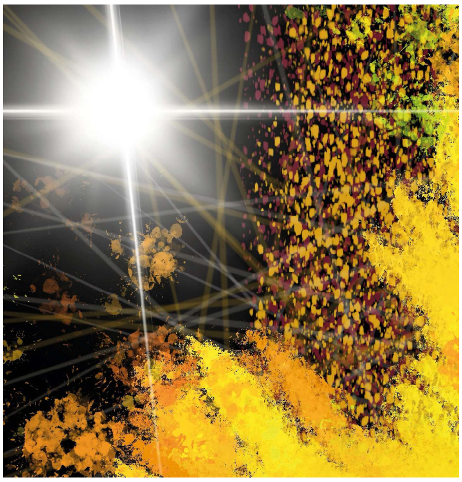

चित्र-कथा

प्रस्तुत आवरण का चित्रांकन वातावरण के सिद्धांत पर आधारित है। साहित्य में विधाओं के अनेकों वर्ग हैं जिनमें साहित्यकार सृजन करते हैं, किन्तु इनका विरचन निर्मित प्रक्रिया में होता है। यही बात चित्रा में प्रस्तुत की गयी है। साथ ही दार्शनिक रूप में संसार क्षिप्रवातेन की अवधारणा को भी व्यक्त करता है।

शुभ्रामणिः एक परिचय

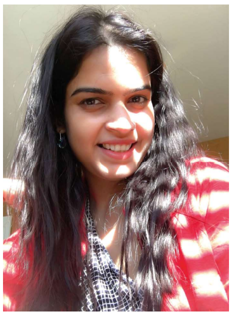

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से उसे कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उसे एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नए–नए आयाम, नए–नए चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उसकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसे ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ–साथ वह अपने खाली समय का सदुपयोग अपने कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी हैं।

चित्र-कथा

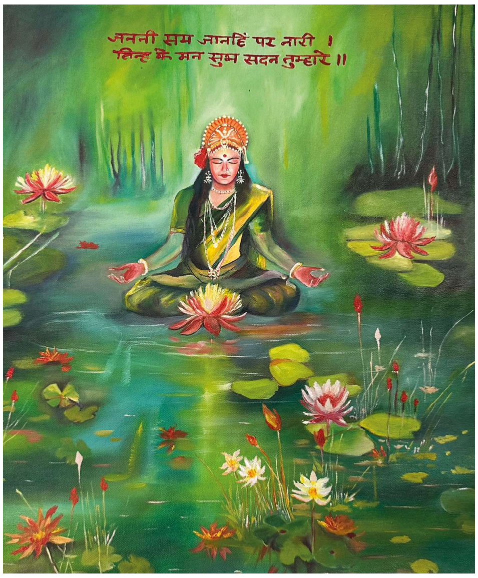

यह चित्र माँ वैदेही के तप की परिकल्पना है जिसमें वह प्रभु राघवेंद्र का सदैव स्मरण करती है।
इस कृति का शीर्षक 'वैदेही' है।
तुलसीदास जी रचित रामचरित मानस में नारियों को सम्मानजनक रूप में प्रस्तुत किया है। जिससे 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवतारू' ही सिद्ध होता है

जननी सम जानहिं पर नारी।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।

जो पुरुष अपनी पत्नी के अलावा किसी और स्त्री को अपनी माँ समान समझता है, उसी के हृदय में भगवान का निवास स्थान होता है।

कलाकार–रचना राणा

रचना राणा : एक परिचय

रचना राणा एक कलाकार हैं जो उत्तर प्रदेश के रामपुर से गाँव से ताल्लुक रखती हैं। उत्तर प्रदेश का रामपुर शहर वैसे तो छुरी, प्रसिद्ध चाकू एवं नवाबो के राजशाही के लिए विख्यात है। ऐसे में साहित्य एवं कला की धुरी बनना थोड़ा मुश्किल तो प्रतीत होता है लेकिन इसी मिट्टी से अपनी मूल शिक्षा लेकर रचना कला में अभूतपूर्व ऊर्जा, स्पष्ट सन्देश, एवं मानवीय संदेशों को कैनवास पर दर्शाती है। उन्होंने राजस्थान के बनस्थली विद्यापीठ से दृश्य कला में एम.फिल पूरा किया। दृश्य कला के प्रति उनका झुकाव और रंगों के प्रति आकर्षण उनकी शिक्षा के साथ–साथ शुरू और गहरा होता गया, जहाँ उन्होंने भारतीय आधुनिक कला से जुड़े ज्ञान को अवशोषित किया। अपनी शिक्षिका सुश्री किरन सरना मैम, इला यादव मैम व पुष्पा दुल्लर मैम के मार्गदर्शन और शिक्षण ने रंगों और कैनवास की इस खूबसूरत दुनिया में उत्प्रेरक का काम किया।

वर्ष 2019 में वह दिल्ली चली गईं और 2021 में मेघवर्ण आर्ट गैलरी की स्थापना की। उनका दृढ़ विश्वास है कि जैसा कि हम "आर्ट ऑफ लिविंग" की सराहना करते हैं और आनंद लेते हैं, वैसे ही हमें "आर्ट फॉर लिविंग" को स्वीकार करना, आनंद लेना और समझना चाहिए।

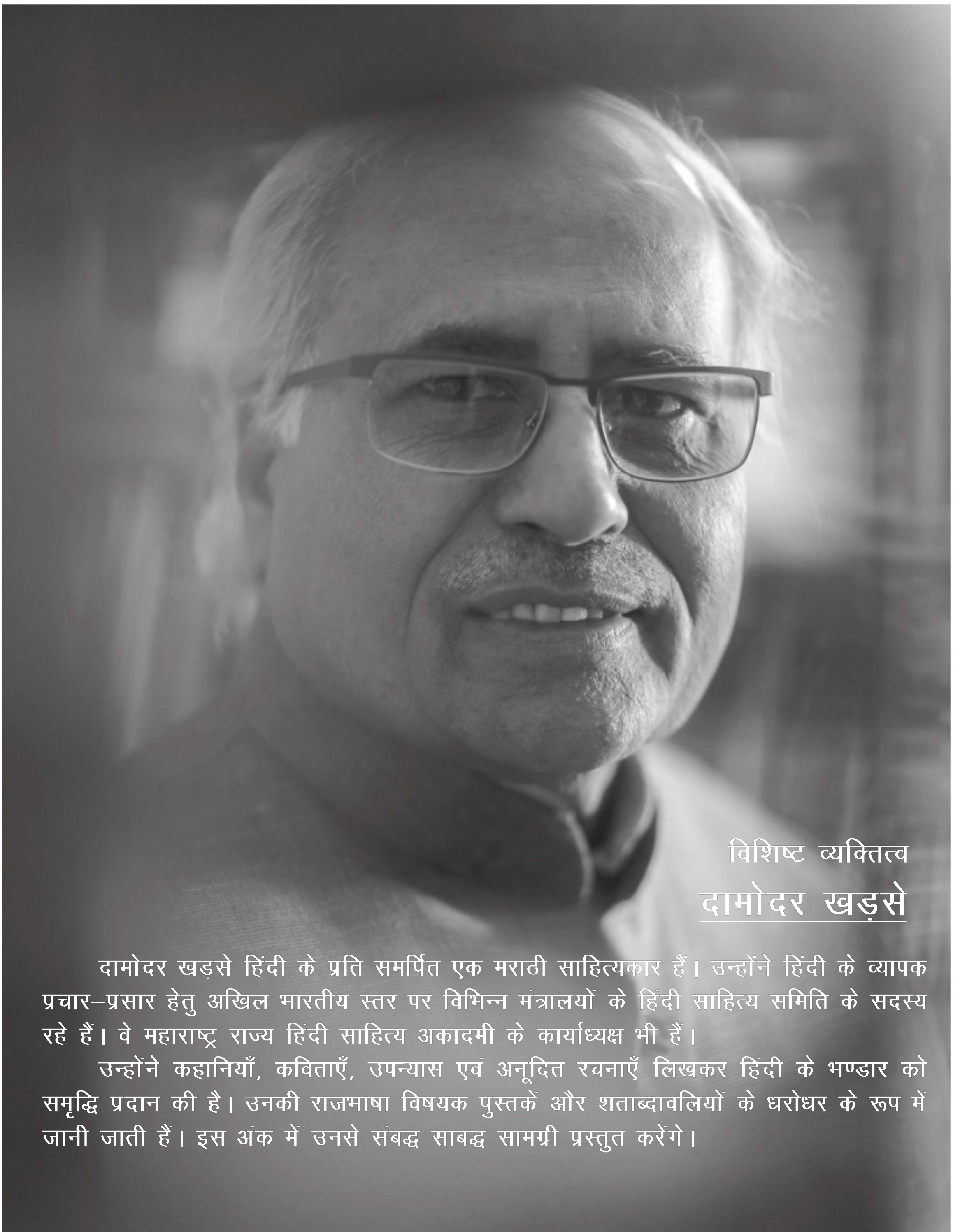

विशिष्ट व्यक्तित्व

दामोदर खड़से

दामोदर खड़से हिंदी के प्रति समर्पित एक मराठी साहित्यकार हैं। उन्होंने हिंदी के व्यापक प्रचार–प्रसार हेतु अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न मंत्रालयों के हिंदी साहित्य समिति के सदस्य रहे हैं। वे महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी के कार्याध्यक्ष भी हैं।

उन्होंने कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास एवं अनूदित रचनाएँ लिखकर हिंदी के भण्डार को समृद्धि प्रदान की है। उनकी राजभाषा विषयक पुस्तकें और शताब्दावलियों के धरोधर के रूप में जानी जाती हैं। इस अंक में उनसे संबद्ध साबद्ध सामग्री प्रस्तुत करेंगे।

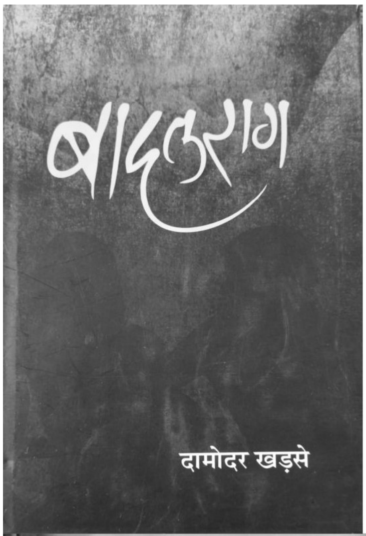
बादलराग
दामोदर खड़से
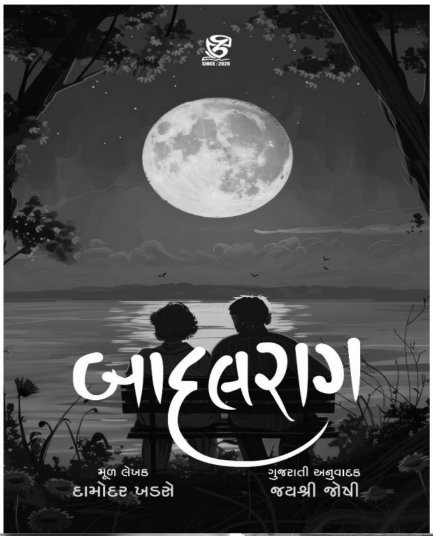
બાદલરાગ
મૂળ લેખક
દામોદર ખડસે
ગુજરાતી અનુવાદક
જયશ્રી જોષી
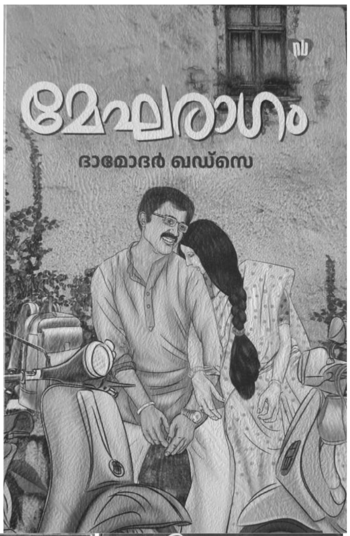
മേഘരാഗം
ദാമോദർ ഖഡ്സെ
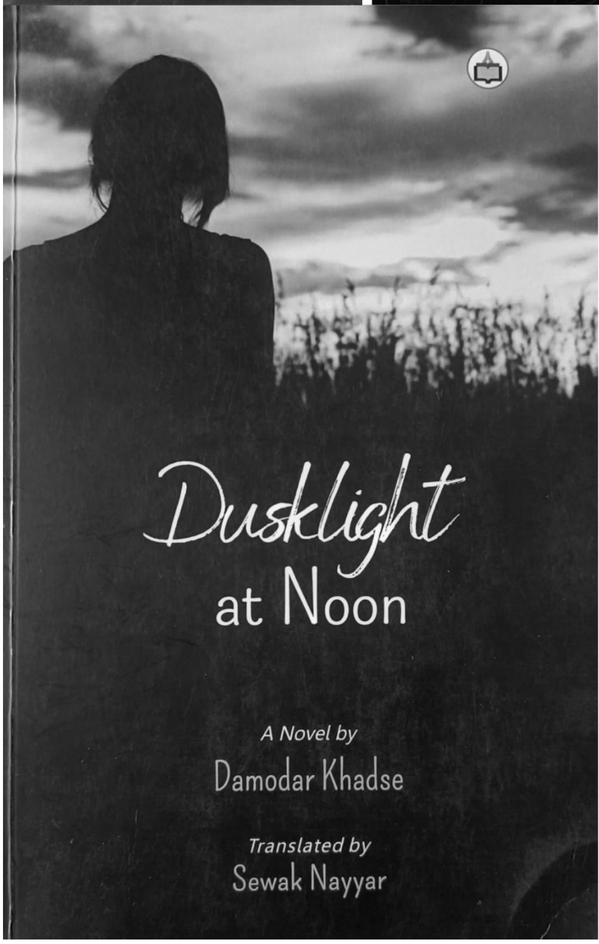
Dusklight
at Noon
A Novel by
Damodar Khadse
Translated by
Sewak Nayyar
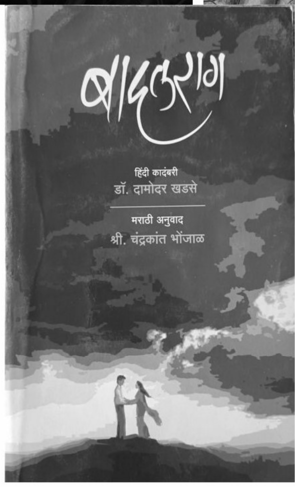
बादलराग
हिंदी कादंबरी
डॉ. दामोदर खडसे
मराठी अनुवाद
श्री. चंद्रकांत भोंजाळ

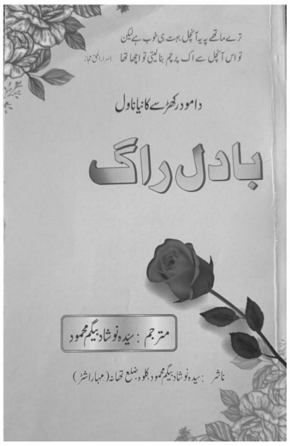
بادل راگ
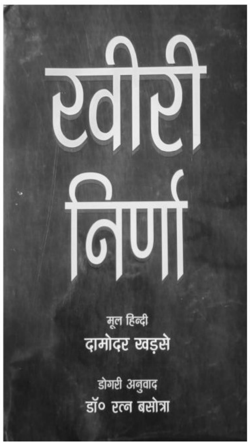
खीरी
निर्णा
मूल हिन्दी
दामोदर खड़से
डोगरी अनुवाद
डॉ० रत्न बसोत्रा

आत्मकथ्य

जीवन ने जो सिखाया, कलम ने अपनाया!

डॉ. दामोदर खड़से

मनुष्य जिस माटी में जन्म लेता है, बचपन बिताता है, उसे जन्मभर नहीं भुला पाता। यह माटी निरंतर बुलाती रहती है। मैंने जब से होश संभाला, मेरे कानों में 'मांदर' की थाप गूँज रही है। 'सैला' ध्वनियाँ हैं। शादी–ब्याह में सांबरसींग लगाए 'निसान' पर चमड़े के बेल्टनुमा वाद्य से निकलती गूँज पर नाचते–गाते, थिरकते आदिवासी... होली पर युवकों की मनचली टोलियों की 'अर...र...र...' के साथ ढोलक की थाप आज भी मेरा पीछा करती हैं। मैं रात के दूसरे प्रहर में उचटी हुई नींद को मनाते हुए खुली आँखें लिए निकल पड़ता हूँ; रामपुर, तहसील – बैकुंठपुर – अब जिला कोरिया (सरगुजा–छत्तीसगढ़)। किशोरवय में कच्ची सड़कों पर नंगे पैर चलते हुए, लहलहाते हुए हरे–भरे खेतों की मेंड़ों से चलते हुए और खेतों में काम करते हुए किसानों को घुटने तक पानी में धान रोपते हुए दृश्य आँखों के सामने स्थिर हो जाते हैं। कदम्ब के पेड़ों से फल चुनने का मौका फिर नहीं मिला। पलाश के ठूँठ में मैना के घोंसले में चूजों को बढ़ते हुए देखना कितना कुतूहल–भरा क्षण होता। ये सारे क्षण आँखों के सामने उभरते रहते हैं और पता नहीं कैसे मुँदी आँखों में सपनों में भी ये ही दृश्यमान होते हैं। आदिम संस्कृति के धनी आदिवासियों का व्यवहार जीवन का पहाड़ा पढ़ाता चला गया। गहरी अनुभूतियों की परतें चढ़ाता गया।

गाँव–गाँव, शहर–शहर होते हुए पिताजी की नौकरी के साथ अंबिकापुर पहुँचे, जिसे भी जल्दी ही छोड़ना पड़ा। विस्थापन का यह सिलसिला निरंतर हिस्से में आता रहा। सुबह सात बजे की बस थी, अंबिकापुर से रवाना होने के लिए। माँ, मेरे दो छोटे भाइयों और बहन को लेकर पिताजी बस स्टैंड पूरी गृहस्थी के साथ पहुँच चुके थे। मैं सुबह छह बजे ही विदा लेने कृष्णा के घर गया। विलगता का समय, किशोरवय, समय तब क्या सूझता। जब तक बस स्टैंड पहुँचता, बस छूट चुकी थी। माल–असबाब बस से उतारा जा चुका था। परिवार के सभी सदस्यों की आँखों में मेरे विलंब से आने की किरकिरी थी। पर पिताजी ने कुछ नहीं कहा। मौन समय सबका अधिक मुखर था। अब तो दूसरे ही दिन सुबह सात बजे की बस थी। किराये का मकान छूट चुका था। रास्ते के लिए जो खाना लाया था, उसी से काम चल रहा था... रात कैसी बीती, आज भी रोंगटे खड़े कर देती है।

दूसरे दिन कृष्णा, अंबिकापुर और न जाने क्या–क्या पीछे छूट गया... पर एक कविता ने पहली बार थाम लिया मुझे और मैं बिछोह शब्दों में ढलता गया। यह मेरी पहली कविता थी। कैसे आई कविता?... न कोई गुरु, न संगी–साथी, एक अनजान शहर अकोला... पर लगा कविता ने थाम लिया... वही गुरु, वही संगी–साथी, वही सहारा!

आसपास पसरा अभाव, अपरिचय और अनिश्चितता के बीच अकोला के सीताबाई कॉलेज में प्रो. रामकृष्ण श्रीवास्तव गुरु के रूप मे मिले। मैं ग्यारहवीं के बाद यहाँ आया था। फिर श्रीनिवास शर्मा और डॉ. सुभाष पटनायक ने मुझे सँवारा और कविता ने भीतर एक उम्मीद जगाई। लड़खड़ाती गाड़ी चल निकली...

अभाव और चुनौतियाँ सबसे बड़े गुरु हैं। इन दोनों को जितने करीब के देखा जाए और उपलब्ध विकल्पों और संभावनाओं पर केंद्रित हम हो सकें; समाधान उसी अनुपात में मिल सकता है। बस, फिसलने और भटकने के प्रति सावधानी जरूरी होती है। कई बार अभाव ही सँभाल लेते हैं। मुझे सबसे अधिक प्रेरणा मिली अपने बाबा – पिताजी से। उनमें स्थितियों की मार सहने की अपनी क्षमता थी। उदारता और सह्रदयता की प्रतिमूर्ति थे वे। स्वतंत्रता सैनिक रहे और जीवन भर खादी के प्रचार के लिए समर्पित रहे। घर में 'कल्याण' पत्रिका आती थी। पिता के स्वभाव और 'कल्याण' के अक्षरों का अद्‌भुत प्रभाव रहा। तभी 'आखिर वह एक नदी थी' या 'जन्मांतर गाथा' जैसी कहानियों को मैं शब्दबद्ध कर पाया।

दिन बदले, दुनिया बदली, हालात बदले। एक साहित्यिक आयोजन के लिए मैं न्यूयॉर्क आमंत्रित किया गया। मेरे जीवन की यह पहली विदेश और अमेरिका यात्रा थी। दुनिया की आर्थिक राजधानी – अमेरिका, चकाचौंध, जगमगाहट की गवाही देने का अवसर डॉ. उषादेवी विजय कोल्हटकर के कारण मिला। उनके भव्य और आलीशान घर में रात के दो बजे तक नींद का नामोनिशान नहीं था। कुछ तो जेटलॉग था, पर दरअसल जागी आँखों का सपना लिए वर्तमान और अतीत के बीच लंबी यात्रा पर था। मुझे लगता है, मेरा लेखनय मेरे जीवन में रामपुर जाने जैसा है। सहज–स्वाभाविक। कई अनुभूतियाँ, अभिव्यक्ति में ढलती गई। बिना किसी वाद के सामाजिक विसंगतियों के ऊहापोह ललकारते रहे और कविता से गद्य कहानी–उपन्यास की ओर कब झुका पता ही नहीं चला। वर्तमान की चुनौती ने नई रसद दी और 'चुभता हुआ घोंसला' पहली कहानी के रूप में मेरी अँगुली पकड़कर यात्रा पर निकल पड़ी।

कमलेश्वर की 'सारिका' में मेरी कहानियाँ आने लगीं। 'समांतर लेखक सम्मेलन' में भागीदारी होने लगी। सामाजिक सरोकारों की कहानियों–चर्चाओं की प्रतिध्वनियाँ इन सम्मेलनों में खूब उठीं–राजनीतिक–सामाजिक ऊहापोह, मत–मतांतर और विमर्शों से सम्मेलन सार्थक और सक्रिय हो उठता। इन्हीं सम्मेलनों में बलराम, संतोष तिवारी, सूर्यकांत नागर, जितेंद्र भाटिया, दया पवार, बाबूराव बागुल जैसे कथाकारों से मुलाकात हुई। फिर दया पवार की 'अछूत' नामक आत्मकथा के अनुवाद का सिलसिला शुरू हुआ, जो दलित साहित्य की बुनियादी पुस्तक सिद्ध हुई। मेरे अनुवाद–कार्य का प्रारंभ इसी पुस्तक से हुआ।

आम तौर पर, अनुवाद को दोयम दर्जे का काम समझा जाता है। वैसे दया पवार की आत्मकथा का अनुवाद हिंदी में करना मेरे लिए अत्यंत चुनौतीभरा काम था, क्योंकि 'अछूत' के कैनवास से मैं अभ्यस्त नहीं था। आँचलिक भाषा–संस्कृति और रस्मो–रिवाज, खान–पान का अनुवाद करना मेरे लिए आसान नहीं था। मैंने स्वीकार किया। राधाकृष्ण प्रकाशन ने इसे प्रकाशित किया। पुस्तक की व्यापक चर्चा हुई और दया पवार राष्ट्रीय

लेखक के रूप में उभरे। जब उन्हें पद्मश्री सम्मान घोषित हुआ तो उन्होंने याद करते हुए मुझे लिखा– 'आपने मुझे मराठी की झील से निकालकर हिन्दी के महासागर में पहुँचाया। इस 'पद्मश्री' में आपका भी योगदान है...।' यह दया पवार का बड़प्पन था, पर मुझे लगा अनुवाद उतना दोयम दर्जे का कार्य नहीं है!

मेरी रचना–प्रक्रिया को मैं बहुत सहज पाता हूँ। विषय सामाजिक हो या कोई अन्य, एक लंबे समय तक मथता रहता है– विशेषतः कहानी या उपन्यास का। कागज पर उतरते समय कई परिवर्तन भी होते जाते हैं। आम तौर पर, एक ड्राफ्ट बन पाता है। मेहनत की कमी महसूस करता हूँ। पर शैली–सौष्ठव के लिए मैं आग्रही कभी नहीं रहता। मेरी कलम को पात्र ही हथिया लेते हैं और मैं उनके पीछे निकल पड़ता हूँ। जहाँ लगता है– सामने दोराहा है, चौराहा, बंद गली है, ट्रैफिक जाम है– कैसे जाऊँ आगे? मैं रुक जाता हूँ। असमंजस, अनचाही, अनिश्चय की यात्रा करना बहुत अप्रिय लगता है। एक कहानी शुरू हुई। यात्रा दूर तक गई। पर अचानक कहानी का अंत मुझसे खो गया। मैंने कहानी रोक दी। दूसरी कहानियाँ आईं और अंत को अपनाती आगे बढ़ गई। वह कहानी ठहर–सी गई। शुरू करने के छह वर्ष बाद उस कहानी का अंत स्पष्ट हुआ। वह कहानी 'धर्मयुग' में दीपावली विशेषांक में प्रकाशित हुई। तब धर्मवीर भारती संपादक थे।

कहानियों के संबंध में कैलाश सेंगर ने एक बार लिखा था– काश तुम और मांजते, बेहतरीन कहानी की संभावना थी। मेरा लेखन, मेरी कमजोरी के साथ आगे बढ़ता रहा। मैं भी कई कहानियों के छपने पर महसूस करता कि मैं कुछ कमियों से बच सकता था। चाहता हूँ कि मैं विशेष मेहनत कर अपनी लेखन–प्रक्रिया को और मजबूत कर सकूँ। लेकिन, मैं मित्रों से अवश्य विमर्श करता हूँ। विजय दामले मेरी कई रचनाओं के पहले पाठक होते हैं। कैलाश सेंगर के अलावा, घनश्याम अग्रवाल, अशोक गुजराती, सुनील देवधर, राजेंद्र श्रीवास्तव भी मेरी सृजन–प्रक्रिया के सहयात्री रहे हैं। बलराम और सूर्यकांत नागर मेरी कथा–यात्रा के प्रारंभ से ही जुड़े हैं। दूसरा सप्तक के कवि हरिनारायण व्यास से विमर्श धरोहर के रूप में मेरी यात्रा में शामिल है। उनका सान्निध्य कविता में आत्मा की तलाश करते समय के रूप में मेरे साथ अक्षुण्ण है।

राष्ट्रीय स्तर के एक संस्थान में कार्य करते हुए तमाम तरह के चेहरों से मैं रूबरू हुआ। समाज ने बहुत अनुभव दिए। नगरों, महानगरों ने खूब सिखाया। मुंबई निवास ने एक उपन्यास दिया। हालात के हाथों छले जा रहे सामान्यजन का जीवन, हर क्षेत्र में राजनीति का दखल, दीमक की तरह फैल रहे नेता और उनकी मंशा को पूरी करने वाले अफसरों के चेहरे भी खूब दिखे। फिर एक कहानी 'साहब फिर कब आएँगे माँ?' शब्दबद्ध हुई। 'फिरौती' कहानी भी इसी भावभूमि की उपज है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में नई विसंगतियाँ मनुष्य की स्थितियों को चुनौती में तब्दील कर रही हैं। संगठित पेशवर लोगों का पलड़ा भारी हो चुका है। इस दौड़ में प्रकृति और कर्ज की मार झेल रहे किसान अपनी जमीन बेचकर मजदूर हो जाने को विवश हैं। वे फंदे को गले लगाकर अपनी जीवन–

लीला समाप्त करने को मजबूर हैं। ऐसे में, जब सदानंद देशमुख के मराठी उपन्यास 'बारोमास' की कथावस्तु देखी तो इस उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद करने की ओर मैं आकर्षित हुआ। इस पर हिन्दी में फिल्म भी बनी। इसी तरह, शहरों की चमक–दमक के बीच त्यौहारों के दीये जब गाँव–खेड़ों में बुझते दिखते हैं, तब 'इंद्रधनुष टूटा हुआ' जैसी कविताएँ मेरी रचना–प्रक्रिया में शामिल हो जाती हैं। फिर भालचंद्र नेमाड़े का देशीवाद अपनी ओर खींचने लगता है।

'मृत्युंजय' के रचयिता शिवाजी सावंत के एक रेखाचित्र ने मुझे बहुत आकर्षित किया। 'ऐसे लोग, ऐसी बातें' शीर्षक से मैंने इसका हिन्दी अनुवाद किया। गाँव के तमाम पात्र इसमें जीवंत हो उठे हैं। ऐसा ही एक रेखाचित्र विश्वनाथ त्रिपाठी का है– 'नंगातलाई का गाँव'। जीवंत पात्र सार्थक होकर ज्यों सामने आ खड़े होते हैं। इन्हीं कृतियों ने मुझे 'कल की ही तो बात है', लिखने के लिए प्रेरित किया।

जीवन कई शहरों में टुकड़ा–टुकड़ा बँटा हुआ है। रामपुर– अंबिकापुर से होते हुए दतिया, इंदौर, भोपाल, बिलासपुर, फिर अकोला से नागपुर, ठाणे, मुंबई और अंतिम रूप से (अब तक) पुणे। कुछ वर्ष अध्यापन के बाद बैंक में अधिकारी। विभिन्न स्थानों में भटकते हुए शिक्षा में व्यवधान और गृहस्थी की लड़खड़ाहट को झेलते हुए, लेखन का सफर जारी रहा। व्यंग्य की ओर केवल कविता तक सीमित रहा; वह भी कुछ कविताओं तक ही– 'मैंने गोल्ड मेडल के साथ डिग्रियाँ लीं। मेरे देश ने मुझे आधी पगार पर मास्टरी दी, फिर मैंने यूनिवर्सिटी बंद करवाने की लीडरी की, मेरे देश ने मुझे, एजुकेशन मिनिस्ट्री दी...।'

जीवन ने जो सिखाया, कलम ने अपनाया। कलम ने कई संघर्षों से उबारा। कई संघर्षों में साथ दिया। कलम से बहुत बड़े परिवर्तनों का झंडा लहराने की बात कभी नहीं लगी। परंतु, अपने भीतर कई परिवर्तन मैंने अवश्य अनुभव किए। कलम को थामकर जीवन की लंबी रस्सी पर संतुलन साधने की कोशिश जरूर हुई। यात्रा में आगे बढ़ते हुए कई मित्र मिले... अंतरंग हुए। कई बार तो मित्र और कविता एक–दूसरे में घुल–मिल गए।

एकांत में, आज भी रामपुर में पूस के महीने में, फसल कटाई के बाद 'छेरता' माँगने, घर–घर घूमते मिले चावल की गंध ताजा हो आती है। भादों में 'करमा' में थिरकते स्त्री–पुरुष कदम पूरे अस्तित्व में नर्तन बो जाते हैं। तेज रफ्तार जिंदगी की शिकारी कुशलता की भीड़ में, रामपुर की भोलीभाली तस्वीर आज भी संबल दे जाती है। कांति साहू और रामचरण जैसे संगी–साथी की आज भी तलाश रहती है। सच माटी की गंध निरंतर पीछा करती है। 'गंध' नामक एक कहानी 'धर्मयुग' में बहुत पहले छपी। उसे पढ़ने के बाद, मुंबई के नरीमन पॉइंट इलाके में उच्च ओहदे पर आसीन एक परिचित ने रात ग्यारह बजे फोन करके कहानी के लिए बधाई दी और मुझसे सीधा सवाल किया कि मुझे उनकी डायरी कैसे–कहाँ मिल गई?' जीवन में कितना साम्य हो सकता है। अनुभूतियों की समानता ही अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता है।

❑❑

चिंतनधारा

अंतरानुभूति का रूपायन

(संदर्भः श्री दामोदर खड़से का कविता–संग्रह 'अतीत नहीं होती नदी' विशेष)

आनंदप्रकाश दीक्षित

दिशा प्रकाशन, दिल्ली–35 से सन् 2013 में प्रकाशित 'अतीत नहीं होती नदी' श्री दामोदर खड़से का छठा कविता–संग्रह है। इसके बाद सातवाँ 'नदी कभी नहीं सूखती' (शिल्पायन दिल्ली) 2014 में और इधर ताजा–तरीन आठवाँ संग्रह 'पेड़ को सब याद है' (यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली–शाहदरा) भी आ चुका है। यों वे बहुआयामी रचनाकर्मी हैं और प्रकाशन–क्रम की दृष्टि से उपन्यास से आरंभ करने वाले इस साहित्यिक–यात्री की अब तक उपन्यास, कहानी, यात्रा, भेंटवार्ता, मराठी तथा अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद तथा राजभाषा–विषयक लेखन से संबंधित कुल मिलाकर 37 पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। पर इधर के कुछ वर्षों में कविता के प्रति उनकी रुचि विशेष रूप में प्रकट हुई है। शायद कहना अनुचित न होगा कि उनकी यह रुचि, रुचि ही नहीं कविता के प्रति उनकी प्रबल आसक्ति की ओर संकेत करती है। यह इसलिए कि कविता पर उनकी अन्यान्य संग्रहों में कविताएँ संकलित हैं, पर 'तुम लिखे कविता', संग्रह तो जैसे कविता के विषय में पूरा एक प्रबंध (शास्त्रीय अर्थ में नहीं) ही विरच दिया गया है। उक्त संग्रह की तथा उनके अन्य संग्रहों में सम्मिलित कविता–विषयक कविताओं के आधार पर कविता के महत्व पर एक भरपूर लंबा बयान दर्ज किया जा सकता है।

प्रस्तुत संग्रह की पहली रचना है 'कविता'। पराश्रित, पराधीन या पर–सेवारत व्यक्ति के लिए जीवन दुर्वह हो जाता है, 'समय/जब कहीं गिरवी हो जाता है', 'साँसें तब/कितनी भारी हो जाती हैं' और 'आसपास दिखता नहीं कुछ भी/केवल देह दौड़ती है। बरसाती बादलों की तरह। हाँफना भी भुला देती है थकान,' तब कवि की सम्मति में कविता सुरक्षा–ताबीज का काम करती है। अतः उसका सत्परामर्श हैः 'ऐसे में तब तुम/कविता की ताबीज/बाँहों पर बाँध लेना।' कविता जैसे कवि के अंतर्मन में गूँजनेवाली एक 'गुनगुनाहट' है और अभिव्यक्त होने पर पाठक के साथ संवाद स्थापित करते हुए कवि और पाठक के बीच अंतरंग बातचीत की 'फुसफुसाहट' बनकर एक गहरा संवेदनापूर्ण रिश्ता कायम करती है। पाठक या श्रोता के अन्तर्मन में पैठकर वह कवि के समान ही उसके अपने व्यक्तित्व का भी अभिन्न अंग बन जाती है और उसकी दुःखानुभूति, उसके जीवनांधकार तथा कटु, पीड़क एवं विसंगत बातों से पार पाने का ऐसा प्रभावशाली माध्यम बन जाती है कि 'टूटता समय/एकलड़ी बनकर/कभी सीढ़ी बनकर/तुम्हारे सामने/जगमगाएगा/देखते–देखते हर गिरवी पल/तुम्हारा अपना हो जाएगा'– पर इतना जरुरी है कि 'कविता का ओर–छोर/तुम अपने हाथों में/जगाए रखना'–

कविता मनुष्य के अकेलेपन, उसके शून्य अंतर्मन को संवाद की, किसी से बतियाने और अपने साथ किसी के होने की अनुभूति जगाने का सबसे कारगर उपाय है, अतः 'कविता के साथ' (पृ. 115) बिताया गया समय बड़ा सुकून देने वाला और त्राणदायी होता है। विषय समय, टूटते रिश्तों और संवादहीनता की स्थिति में कविता शब्दों की रोशनी बनकर संवाद के लिए रास्ता खोलती है। 'संवादों की रोशनी' (पृ. 116–117) शीर्षक पूरी कविता में कवि ने विषय स्थितियों को प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से व्यक्त करते हुए कविता से होनेवाली सुखानुभूति और प्रसन्न वातावरण का जिस आश्वस्तिकारी तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से नियोजन या प्रकाशन किया है वह पूरी कविता को पठनीय एवं स्मरणीय बनाता है।

जीवन–यात्रा में कविता और हर कविता में एक यात्रा की उपस्थिति न केवल 'अयाचित अकेलेपन' को विसर्जित कर देती है बल्कि 'भीतर बची हो जब थोड़ी–सी कविता हर सूनापन पिघल जाता है/तब कोई पुकार/खाली नहीं जाती'– (कविता के साथ, पृ. 115) पर इसके साथ ही उसका दूसरा अनुभव भी है। वह एक दूसरे सत्य पर अँगुली रखता है। 'अकथ' शीर्षक कविता (पृ. 107) में वह उसी सत्य को वाणी देता हुआ कहता है, 'भीतर एक/संवाद जब हो जाते लबालब/कहने–सुनने से परे/हो जाए जब मौन/विवेक हो सिरमौर/इच्छाएँ हों स्थगित' तब जो एक कल्पतरु भीतर से उगता है और तृप्ति होती है उस 'गूँगे के गुड से आत्मीय समय पर' 'कविता लिखना/कितना मुश्किल होता है।' 'समय पर' 'पर' अधिकरण कारक के चिन्ह में तथा पर, दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है किंतु दोनों का अर्थ एक ही नहीं होगा। में यदि व्याप्ति का बोधक है तो पर विषयाधिकार का। 'समय पर' का में–परक अर्थ होगाः ऐसे समय, स्थिति या काल के होते हुए अर्थात् जब ऐसा समय हो, और पर–परक अर्थ होगाः ऐसे समय के विषय में। कदाचित कवि को पहला अर्थ यहाँ अभिप्रेत है। अर्थात् कवि शायद यह कहना चाहता है कि कविता की रचना रचनाकार के परिपूर्ण क्षणों की वाणी नहीं होती या उन क्षणों में कविता की अभिव्यक्ति संभव नहीं होती। उसके लिए किंचित अभावात्मक तथा संघर्षपूर्ण वातावरण अपेक्षित होता है। संग्रह की पहली ही कविता (कविता शीर्षक) भी इसी ओर संकेत करती प्रतीत होती है। इस संदर्भ में 'गंध' शीर्षक कविता (पृ. 126) विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होती है जिसमें कवि अपनी 'आँखों और कलम के बीच' कविता को एक पुल बताता हुआ कविता लिखने और न लिख पाने की दो भिन्न स्थितियों अथवा कारणों का वर्णन करता है। कविता लिखने की एक स्थिति है प्रेम की अनुभूति का होना, जगना और दूसरी है दुनिया से सहम और घबरा जाने की। दूसरे शब्दों में कहेंगेः प्रेमानुभूति और विषमताओं–जनित उद्विग्नता की अनुभूति, दोनों कविता की जन्मदात्री हैं। लेकिन प्रेमानुभूति की एक विचित्र स्थिति यह भी है कि कभी–कभी बहुत अकेलेपन और थकान के क्षणों में जब मन प्रिय की स्मृतियों में विभोर हो जाता है तो कविता लिखना संभव नहीं होता। पूरी कविता इस प्रकार हैः–

'प्रेम का अहसास/जब–जब भी मुझे,/बाँहों में भर लेता है/मैं कवि हो जाता हूँ/अनायास/ वैसे तो मैं/दुनिया से इतना सहम गया हूँ/कि जब भी घबराता हूँ/कविता लिखता हूँ/कविता पुल है/मेरी आँखों और कलम के बीच/कलम मेरी हर छोटी–बड़ी बात को/सह लेती है–/पिछली रात/ जब मैं था बहुत अकेला/और कुछ थका–थका–सा भी/तो पता नहीं/हवा के झोंके के साथ कहीं से/ रोटी–सी सोंधी गंध भरा आँचल/यादों में लहरा

गया मुझे/और मैं कविता नहीं लिख सका/इस घटना पर।'

अस्तुः कविता के साथ समय का और कविता में समय का बड़ा घनिष्ठ और अनिवार्य संबंध है। समय कविता (सामान्यतः रचना–मात्र) को प्रभावित करता है, क्योंकि वह स्वयं रचनाकार को प्रभावित करता है। रचयिता अपने समय और परिवेश में घटित घटनाओं से अपने लिए रचना की मूल सामग्री ग्रहण करता और अपने संस्कारों के अनुकूल उसका चयन तथा परिष्कार करता हुआ उसे रूप प्रदान या शिल्पायित करता है। रचना रचनाकार के समय और उसके संस्कारों के पारस्परिक द्वंद्वात्मक रिश्ते का संस्कृत या परिष्कृत प्रतिफल है। अनुभव की यथावत् प्रस्तुति नहीं। वह रचयिता के व्यक्तित्व में ढलकर ही अपना रूप ग्रहण करती है। अतः यह रचयिता और उसके संस्कारों पर निर्भर है कि रचना में उसका समय कितना और किस रूप में प्रतिबिंबित हो। श्री दामोदर खड़से की कविता में भी समय आहट है। पूर्वोद्धत कविता–पंक्तियों तथा अन्य कविताओं में भी जैसे वे गिरवी होते समय (कविता) और बंजर समय (पहचान) से चिंतित हैं, वैसे ही उनकी चिंता यह भी है कि जिंदगी का यह समय कैसे कटेगा (उम्मीद) महानगर की भागमभाग (सूरज यहाँ भी, वहाँ भी तथा रोशनी का जन्म), समय की गतिमानता में परिवर्तित होते समय (उगता हुगा पेड़), रिश्तों के बदलाव (अमृत का जन्म), भारी प्रदूषण और शोर (संगीत का जन्म), पर्यावरण के विनाश (नदी के मन में सवाल) एवं भूकंप–जनित त्रासदी (रेतीली नदी), बाढ़ (नदी बही), तीर्थों में फैले पाखण्ड (तीर्थ किनारे नदी) और श्रमिक–जीवन की पीड़ा (कब तक) से वे परिचित हैं। परंतु कठोर जीवन–यथार्थ की ठसक और धमक उनमें उतनी और वैसी तीव्र नहीं है, जितनी और जैसी समकालिक यथार्थवादी रचनाओं में सुनाई पड़ती है। 'हाहाकार का जन्म' तथा 'अ–काल का जन्म' जैसी मुक्तक रचनाएँ भी उनके यहाँ हैं, परंतु कथन की सीमाओं के पार यथार्थ व्याहृति के रूप में नहीं। बोध के स्तर को झटक कर तलस्पर्शी अनुभूति के क्षेत्र में उनका संचरण कदाचित ही हो पाता है। यथार्थ से जुड़ी हुई उनकी एक कविता–कब तक?को उद्धत करना चाहूँगाः– 'रिक्शा चलाते–चलाते/ उसके पैर थिर हो जाते हैं/अनमना हो जाता है वह/सवारी का ध्यान भी नहीं रहता उसे/सब दुः.ख ही दुःख है/सुख के लिए तरसती है दुनिया/ खुशी किसी चिड़िया का नाम है–/घर घर्राने लगा है/बेटियाँ निकल जाती हैं/दामादों के साथ/बेटों को निकाल ले जाती हैं बहुएँ/बुढ़िया रह जाती है/गिरती दीवारों की गवाह/रोटियाँ बोलती/ तवे पर लड़खड़ाती करछुल/पता नहीं कब/मौन हो जाए/वह फिर अनाथ हो जाएगा–/रिक्शा पर बेचैन उसका पैर/चौराहे पर भरपूर ब्रेक लगाता है/ और ट्रक की भरपूर रफ्तार से/साफ बच जाता है/ आखिर कब तक।'

ध्यान रहे, यह ऑटो रिक्शा चालक का वर्णन नहीं, साइकिल रिक्शा–चालक का, उसकी दुःस्थिति की करुण–कथा का वर्णन है। आरामदेह सीट और सिर पर धूप तथा पानी से बचाव के लिए स्थिर छत के नीचे सुरक्षित बैठे ऑटो–चालक तथा चिलचिलाती धूप और अचानक पटापट बरसने लगने वाले पानी की मार को सहन करते हुए कभी सीट पर बैठ कर और कभी चढ़ान पार करने के लिए सीट से उचक कर साइकिल के पैडिल मारने वाले पसीने से तरबतर हुए हाँफते रिक्शा–चालक की स्थिति में महदन्तर है। पहला मशीन का ड्राइवर है और दूसरा रिक्शा–सहित मय सामान और बच्चे के साथ लदी दो भारी–भरकम तुंदिल सवारियों के बोझ को पूरी ताकत लगा कर खींचने वाला दीनहीन श्रमित 'पुलर' है।

खड़से उसके कठोर श्रम का ही नहीं, उसके दुःखमय एकाकी दाम्पत्य का भी जीवंत चित्र खींचते हैं और उसी लपेट में बड़े कौशल से आजकल की बहुचर्चित समस्याओं– परिवार–संस्था का विघटन और वृद्ध जनों के उपेक्षित जीवन पर भी सांकेतिक चिंतातुरता व्यक्त कर देते हैं। 'वह फिर अनाथ हो जाएगा' में उसका अनाथत्व व्यंजित है, बल्कि 'फिर' के माध्यम से उस अनाथता की फिर–फिर आवृत्ति की व्याप्ति तथा पीड़ा भी ध्वनित है और उसके अनमनेपन से लेकर चौराहे पर भरपूर ब्रेक लगाने तक उसके अंतर्मन की विकलता के साथ–साथ उसके सिर पर हर समय मंडराने वाले मौत के साये की भयावहता भी उतनी ही प्रचंडता से अनुभवगम्य है। जिस सरल, मुहावरेदार और चलताऊ भाषा में बात कही गई है, वह जैसे पूरी कविता में व्याप्त अनिश्चित और त्रासद जीवन के अँधेरे की चुभन को पैना तथा नुकीला बनाकर निरीह रिक्शा–चालक को असहाय अवस्था में ले जाकर पटक देती है, वैसे ही पाठक को भी आहत और मर्मबिद्ध अवस्था में तड़पता छोड़ देती है।

जीवन का उत्ताप और वर्तमान में उभर कर सामने आनेवाली सभी समस्याएँ यद्यपि कवि के द्वारा वर्णित नहीं हैं, तथापि उनमें से कुछ बहाने से उपलक्षित अवश्य कर दी गई हैं। स्त्री–विमर्श एवं पर्यावरण ऐसी ही दो समस्याएँ हैं। लक्षणीय है कि प्रस्तुत कविता–संग्रह में नदी, पहाड़, पेड़, फूल, पत्ते, शाखाएँ, जड़ें, सूर्य, चंद्रमा, तारे, आकाश, पृथ्वी, इंद्रधनुष, सागर, सुबह, धूप, अँधेरा, चिड़िया, घोंसले, कुछ हिंसक जीव–जंतु– कितनी सारी नैसर्गिक तथा जैविक चीजें हैं और कहने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य तो है ही, इनमें से कुछ के लाभकर और विनाशकारी रूप भी हैं, इनमें से कुछ के लाभकर और विनाशकारी रूप भी हैं। जैसे बवंडर, बाढ़ और ज्वालामुखी। लेकिन इन सबका उपयोग कवि ने विशुद्ध प्रकृति–चित्रण के लिए नहीं किया है। वे अधिकांशतः जीवन के किसी सम–विषम पक्ष को उद्घाटित करने हेतु उपादान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उनका उपयोग प्रायः प्रतीक के रूप में किया गया है।

पर्यावरण और स्त्री–विमर्श, हमारी दो समकालीन चिंताएँ हैं। मनुष्य ने अपने प्रसार के लिए जिस नासमझी तथा बेदर्दी से प्रकृति का अखूट विनाश किया है, उसके विनाशकारी रूप विगत कुछ वर्षों में हम देख और भुगत चुके हैं। मनुष्य–संस्कार की चिंताओं से जुड़े खड़से जी स्वभावतः इसकी अनदेखी नहीं कर सकते। इस विनाशलीला और उसकी दुष्परिणति का चित्रण भी इसीलिए उनकी दो कविताओं– 'तब सब कुछ तुम्हारा है तथा 'नदी के मन में सवाल' (पृ. 139 व 140) में पीड़ा, कटुता और व्यंग्य के साथ हुआ है। अस्थायी और छंद् सौंदर्य के आडम्बरपूर्ण आकर्षण (जुगनू की झिलमिलाहट) को ध्रुव (स्थायी) समझकर (अबोधता) से मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए नए–नए साधनों का उपयोग करके, व्यस्त जीवन के क्षणों में भी किसी न किसी तरह समय निकाल कर 'नदी–झरनों, पर्वत–पहाड़ों, गुफाओं–मंदिरों तक पहुँचने के लिए/साधनों की सुरंगें तो बिछा लीं– 'प्रकृति के सहज सौंदर्य तथा प्रसन्न स्वरूप (मुस्कुराहट), जीवन के नित–नूतन परिवर्तित होते अभिराम वैभव (नृत्य) की ओर से आँखें मूँद कर, अपने समीपतम शीतल, सुगंधित तथा स्पर्श–मृदुल वायु (चंदनबन) से आयी एक झोंके की रेशमी सरसराहट तक को निजी स्वार्थ में मग्न मनुष्य की चेतना ग्रहण नहीं कर पायी। अपने विनाश या निःसत्व से सूने और खाली जीवन के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। (एक खालीपन बो दिया तुमने अपनी दुनिया में/बदहवास से देख रहे हो दृश्य/ जो तुम्हारे अपने नहीं)। भौतिकता की नश्वर तड़क–भड़क

से जनित इस भटकाव में सब–कुछ पर अधिकार कर लेने की लिप्सा ने मनुष्य को आत्म–वंचित करके विनाश के कगार पर ला पटका है। उसे कुछ पाना है तो उसे पहले स्वात्म को परखना–जानना होगा ताकि वह अपनी शक्ति और सीमा को समझ सके (पाओ खुद को पहले तुम/फिर सब–कुछ तुम्हारा है)। वैज्ञानिक अनुसंधानों का उपभोक्ता संस्कृति में नित्यप्रति होने वाले अंधाधुंध दुरुपयोग के विरुद्ध एक कवि की यह एक काव्यात्मक चुनौती है। 'नदी के मन में सवाल' शीर्षक कविता में यही चुनौती जीवनदायी वर्षा के बेमौसम बरसने से फसलों की होने वाली हानि को लेकर मनुष्य द्वारा उसे कोसे जाने के विरुद्ध मनुष्यकृत पर्यावरण–विनाश पर व्यंग्य का निशाना साधने का रूप ग्रहण कर लेती है।

बाढ़ का एक दूसरा दृश्य भी है, जिसकी अवतारणा स्वयं 'बाढ़' शीर्षक कविता (पृ. 50–52) में हुई है। विनाशलीला भी वहाँ है और उसकी चपेट में आये लोगों का दुःख–दर्द भी। लेकिन कवि 'विवश डूबती आँखें/विप्लव का दृश्य देखती हैं 'के चरम बिंदु पर पहुँच कर सहसा मनुष्य के रिश्तों की ओर लौट पड़ता है और बाढ़ में दब–झुक जाने वाले नन्हे–नन्हे दूब के पौधों के उस प्लावन में भी अपनी जमीन से जुड़े रह जाने तथा नई ऊर्जा के साथ उनके पुनर्जीवित हो जाने का साक्ष्य देकर आगे आने वाली पीढ़ी की रक्षा करने के लिए प्रेरित करता है। 'आओ ऐसी अंधी बाढ़ में/इन कत्थई पौधों की रक्षा करें/धरती हरी–भरी ही अच्छी लगती है।'

खड़से जी एक यथार्थवादी कवि की तरह बाढ़–जनित विनाश के भयंकर दृश्यांकन के लक्ष्य पर ही विराम नहीं करते, सांस्कृतिक और अध्यात्मवादी परंपरा में आगे बढ़ कर मनुष्य को आश्वस्त करने के साथ–साथ उसका कर्तव्य–बोध जगाते हुए उसे कर्म–पथ में भी प्रवृत्त करते हैं। अध्यात्म का भूत–हित में प्रयोग करते हैं। लेकिन कविता में 'बहुमत' तथा प्लावन के स्थान पर 'विप्लव' जैसे राजनीतिक क्षेत्र

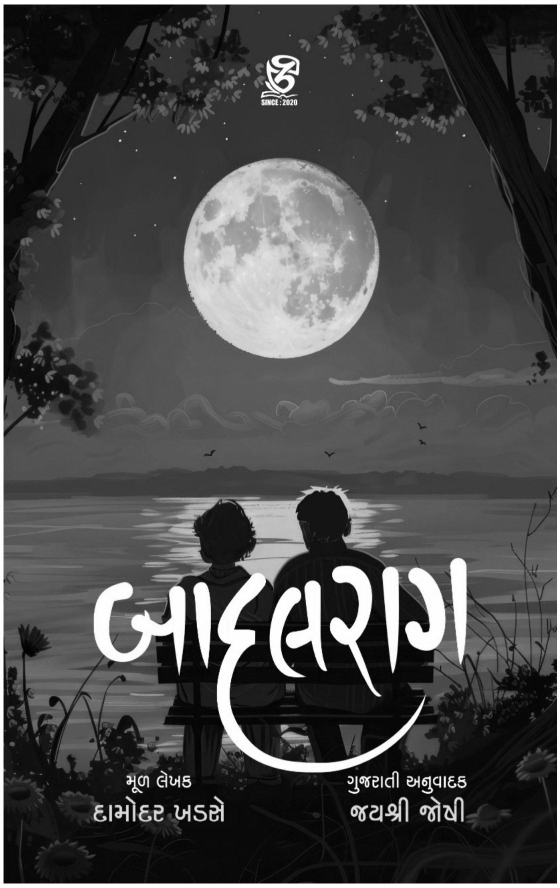

के द्वयर्थक शब्दों के प्रयोग के आधार पर लगता है कि उनका अभीष्ट कविता को राजनीतिक संदर्भ देना भी है। उस स्थिति में बाढ़ एक प्रतीक बन जाती है। उक्त कविता की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ का पोषण करती प्रतीत होती हैः– 'पर जब बाढ़ आती/पानी के विवेक पर/प्रश्न–चिन्ह लगा जाती है/बाढ़/नदी–नालों का पानी समेट/बहुमत पा जाती है/और अपने आपको /बहाव के हाथों सौंप जाती है।'

सामाजिक–बोध से जुड़ी आज की एक महत्वपूर्ण समस्या है, स्त्री–विमर्श। खड़से जी की

कविता में किसी हद तक स्त्री है, परंतु विमर्श को सहेजती हुई उससे जुड़ी समस्याएँ नहीं। प्रस्तुत संग्रह में एक कविता है– 'स्त्री' (पृ. 33–36) एक और कविता है 'नदी बहती है' (पृ. 118–119) दोनों कविताओं में नदी स्त्री के प्रतीक के रूप में है। पहली कविता अपेक्षाकृत लंबी है और नदी के बहाने स्त्री के कठिन जीवन–संघर्ष, उसकी संवेदशीलता, बाधक तत्वों के विरुद्ध उसकी सहनशीलता, संयम, उससे सहायता की अपेक्षा करने वालों (प्यासों) के प्रति उदारता, जड़ कर देने वाली परिस्थितियों में भी अपनी आंतरिक करुणा को जगाए रखने की उसकी क्षमता तथा उसके अनाविल प्रेम एवं समर्पण–भाव आदि का सांकेतिक वर्णन किया गया है। अन्नतः कविता समाप्त होती है सागर–मिलन के साथ, किंतु सागर के खारीपन कम कर सकने की संभावना के साथ। पुरुष के पुरुष और कटु–तीक्ष्ण स्वभाव में अपने साहचर्य से निर्मलता–सदाशयता और स्निग्धता लाने संभावित क्षमता की स्वीकृति के साथ। यह है स्त्री, जो नदी के समान सतत् गतिशील और परहित–निरत रहने वाली 'शाश्वती' है। 'उसके हरे–भरे शांत जल में / जब भी कोई / डुबोता है बिवाई भरे कदम / हर कदम से दुःख–दर्द / हर लेगी वह। सुबह से शाम तक / सड़कें, बसों, टैक्सियों, ट्रेनों में / किचन, घर, दफ्तरों में / बच्चों–पति, सगे–संबंधी / मित्र–परिवार / लोभी–लालची मायावी–रावणों के बीच / लक्ष्मण–रेखाओं के बाहर–भीतर / बहती है स्त्री / नदी की तरह।'

'नदी बहती है' कविता में कवि एक दूसरे अंदाज में वर्षाकालीन नदी के बहाव और यदा–कदा उफन कर बाढ़ में विकराल रूप धारण कर लेने का वर्णन करते हुए उस विनाशकारी दृश्य को देख कर द्रवित नदी के भीतर–भीतर किसी को न दिखलाई पड़ने वाले, उसके आँसुओं और 'अपने दोनों कंधों पर' 'सपनों के शव / लुटे शैशव उठाकर ऋतुएँ पार करने का दृश्यांकन करने के क्रम में ही सहसा' लोकल ट्रेनों, बसों की भीड़ में / पसीने–सी बहती है / घर–दफ्तर को जीती है। सड़कों पर चुभती नज़रें सहती है 'कह कर दृश्य–पट को स्त्री के पक्ष में परिवर्तित कर देता है और फिर तुरन्त ही 'सागर पर विश्वास अडिग' रखने वाली नदी के सागर को छूकर उद्‌गम तक अमृतमयी हो जाने के प्रसंग–परिवर्तन द्वारा नाटकीय ढंग से चमत्कृत करता हुआ कविता की समाप्ति के साथ स्वानुभूति को इस रूप में व्यक्त करता है:– 'मेरी कलम में जब / कविता की उष्मा रहती है / मेरे भीतर ऐसी ही / एक पवित्र नदी बहती है।'

नदी के प्रति खड़से जी का खास लगाव है। अपने गाँव से लगी नदी को पार करने, उसमें नहाने–तैरने, उसके बहाव–कटाव का विकराल रूप देखने के न जाने कितने अवसर उन्हें मिले हैं। इसलिए नदी उनके जीवन में एक विशिष्ट आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। यों मानव–जाति तथा संस्कृति के विकास में नदी का अपना विशिष्ट महत्व है और परंपरा या वैदिक–काल से अब तक विकसित होने वाले हमारे भाषा–साहित्य में उसका निरंतर नाना संदर्भों में उल्लेख होता आया है और आधुनिक–कालीन हिंदी कविता में अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल तथा रमेशचंद्र शाह ने प्रतीक तथा प्रकृत रूप में उसका उपयोग किया है, पर नदी के प्रति विशेष आकर्षण के खड़से जी के अपने कारण हैं। वे उसे अपनी जीवनाभिव्यक्ति के पृथक और विभिन्न साधनोपाय के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसी संग्रह में नदी से संबंधित चार कविताएँ– नदी के भीतर (पृ. 98–99), अतीत नहीं होती नदी (पृ. 105–106) तथा रेतीली नदी (पृ. 142–147) तथा तुम्हारा वजूद (पृ. 154–157) और हैं जिनमें से एक पर तो प्रस्तुत संग्रह का नाम ही निर्धारित है। 'नदी के भीतर'

जीवन–प्रवाह का प्रतीक है। इस प्रवाह में कवि एक क्षण की भाँति बह निकलता है और पेड़, पहाड़, पगडंडियाँ, उतार–चढ़ाव, समतल, कभी कटाव और कभी टीले जैसे साधक–बाधक तत्वों को पार करता चलता है। नदी रूपी जीवन–प्रवाह में प्रवाहित एक कण का–सा अस्तित्व धारण करने वाला कवि नदी के बाहर (जागतिक) शोर–कोलहल, आपाधापी आदि से अपरिचित नहीं हैं, किंतु उसकी आस्था या उसका धैर्य उसे उस शोर से प्रभावित एवं विचलित नहीं होने देता। वह नदी के आंतरिक कलकल को अधिक सुनाता है– कितना शोर है। नदी के बाहर/पर भीतर मैं/पल–पल सुनता हूँ/नदी की कलकल।'

'अतीत नहीं होती नदी' में नदी–सामान्य के विभिन्न रूपों का व्याख्यान करते हुए उसके निरंतर परिवर्तमान स्वरूप तथा जीव–मात्र के हित में उसकी उपयोगिता और बाहरी शोर के बरक्स उसके आत्मगत आनंद अथवा मोद का ही वर्णन किया गया है। इस कविता का अंत भी पूर्वोक्त कविता के समान नदी के कलकल–गायन के साथ होता है। अंतर है तो यह कि नदी–सामान्य से हटकर बीच में गोमती नाम आ जाने से यह विशिष्ट नदी का बोध कराने लगती है, जबकि कदाचित कवि को यह अभीष्ट नहीं भी हो सकता। पीढ़ियों से चले आते नदी के साथ जुड़े जन्म से मृत्यु–पर्यंत किये जाने वाले हिंदू–संस्कारों का हवाला देकर कवि–दुःखी, भटके और टूटते मनुष्य को अपने विश्वास में लेता हुआ उसे आश्वस्त करता है– 'तुम जब टूटते से लगो/तुम जब भटकने लगो/तुम कभी चटखने लगो/नदी की पारदर्शी धारा में/अपनी बिवाइयाँ सिरा देना/गोमती की एक बूँद/कायाकल्प कर देगी/हर मूर्च्छा हर लेगी/नदी कभी निरपेक्ष नहीं होती'।

'रेतीली नदी' कथात्मक जमीन पर रचित धुँधली अर्थच्छाया वाली लंबी (पारिभाषिक अर्थ में नहीं) कविता है, जिसमें नदी, पहाड़, वनस्पति तथा भूकंप आदि के बिंब उकेरते हुए प्रतीक–पद्धति से स्त्री के मुग्धावस्था से प्रौढ़ावस्था तक विकास और स्थिति–परिवर्तन के संकेत के साथ–साथ समाज तथा पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न स्त्री की मानसिक तथा दैहिक दशाओं का चित्रण किया गया है। (मुग्धा तथा प्रौढ़ा नाम से बिदकने वाले विद्वानों के लिए यह निवेदन करना यहाँ गैरजरुरी नहीं होगा कि यहाँ नायिकाभेद की नहीं, केवल अवस्थाभेद की बात कही जा रही है)। इन दशाओं में नारी में होने वाले परिवर्तन में अन्य बातों के साथ–साथ उसके स्वाभिमान–जनित विद्रोह तथा संघर्ष का भी हिस्सा है, जिसकी इक्कीसवीं सदी का कवि या रचनाकार अनदेखी नहीं कर सकता। उक्त कविता में भी नदी (स्त्री) 'पहाड़ (बाधक, जड़ सामाजिक तत्व) की सीमाओं को/ललकारना नहीं भूली।' उसके जीवन में कंपित और बेचैन करने वाली भूकंप–सदृश विषम, भयावह, विनाशकारी हृदयविदारक स्थितियाँ आती नहीं। उन विषय स्थितियों ने नदी (स्त्री) को भावनामय और उद्विग्न कर दिया इतना कि वह रुआँसी हो आई। अब भी कभी–कभी ऐसे विशाल (सामर्थ्यवान तथा बलशाली) पत्थर (संवेदनहीन, जड़ बाधक–तत्व) उसके आड़े आते ही हैं। उस समय स्वभावतः विगत में सहन की गई पीड़ा और अत्याचार की दुःखद स्मृति उसके सुखी जीवन में पीड़ा जगा देती है। (नदी को/जकड़ लिया था लहरों ने/जगह–जगह/नदी की छाती पर/खींच गया था दरारें भूकंप/नदी की लहरों ने/उन दरारों में समा दिया था अपने आपको/जगह–जगह रुआँसी नदी में/खरोंचों के निशान/अब भी उभरते हैं/उसकी कलकल के बीच/जब कोई विशाल पत्थर/रोक लेता है नदी की गति)। लेकिन नदी है कि सतत् प्रवाहशील है। रीतती हुई भी वह किनारों

की सफेद रेत से घुलती गई (प्रौढ़ होती हुई अपने पार्श्व के सत्वशील समाज के साथ घुलमिलकर आगे बढ़ती रही) और सागर–सी व्यापकता प्राप्त करने के साथ ही उसने अपने आसपास को भी हरा–भरा कर दिया। (स्त्री ने कठिनाइयों को पार करते हुए साज में अपने महत्व की व्यापक स्वीकृति प्राप्त की और उसकी उदारता तथा उदात्त कर्मण्यता के फलस्वरूप उसके आसपास के सामाजिक जीवन में जीवंतता और सुखदाता का विकास होता गया)। दूसरी ओर पहाड़ की स्थिति क्या हुई ? यह कि 'इधर पहाड़/ चट्टान, पत्थर और टुकड़ा–टुकड़ा/होता हुआ रेत हो गया'– दुष्ट और दुर्विदग्ध की परिणति यही होनी थी। नदी प्रवाहित होती रही। 'इस इलाके में/जीवनदायिनी इस नदी को/रेतीली नदी के नाम से/पीढियों से जानते हैं लोग/नदी अपने भीतर/एक पहाड़ ढोकर/भारी पैरों से/ बह रही है अब भी।' कवि के द्वारा इस समाप्ति–अंश में प्रयुक्त शब्द 'जीवनदायिनी', 'पहाड़ ढोकर', 'भारी पैरों' तथा 'अब भी' अपनी व्यंजना के लिए विशेष ध्यातव्य हैं।

'तुम्हारा वजूद' शीर्षक कविता सीधे नदी से संबंधित नहीं है। है वह मांडवी नदी के विषय में, किंतु वर्णनीय वह नहीं, बल्कि उसमें चाँदनी रात में जगमगाते रंगबिरंगे क्रूज पर हाथों में जाम थामे, मदहोश संगीत में डूबे, थिरकते पैरों और फिसलती नज़रों वाले सैलानियों की मौज–मस्ती और शरारत का चित्रमय वर्णन करना ही कवि का अभीष्ट है। 'इंद्रधनुष रौंदा हुआ' में यदि कवि मुंबई में बीतते साल की आखिरी रात पर मनाए जा रहे जश्न के अवसर पर रानी के हार की तरह रोशनी से चमचमाती नरीमन प्वाइंट की सड़क के क्रॉसिंग के उस पार दनदनाती कारों से जैसे–जैसे बचते–बचाते और जब–तब सर्र–सर्र गुजरती हुई लाल–पीली रोशनी के झोंकों से पीछे धकेल दिए जाते रहने के कारण सड़क पार कर पाने की संभावना की ओर से लगभग हताश, अपनी हथेली पर रखे हुए इन्द्रधनुष के रौंदे जाने का वर्णन करके महानगरीय तथा धनिक वर्ग और सामान्य नागरिक के जीवन के बीच खुद रही चौड़ी खाई का अहसास कराता है तो 'तुम्हारा वजूद' मैं सैलानियों के विलास का चित्रण करके उसका एक दूसरा ही पक्ष उद्घाटित करता है।

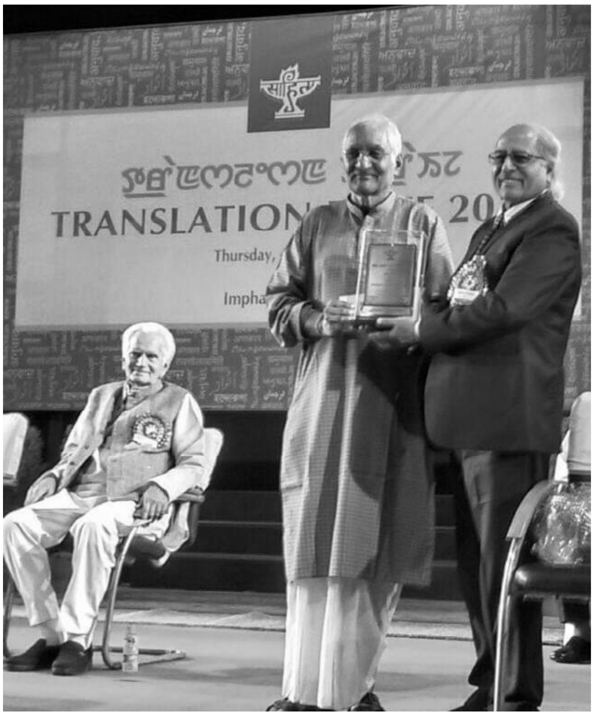

साहित्यक अकादेमी के अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी से बायोमास उपन्यास के हिंदी अनुवाद के लिए अकादेमी पुरस्कार ग्रहण करते हुए डॉ. दामोदर खड़से, साथ में, ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार डॉ. रघुवीर चौधरी।

इससे पहले कि हम आगे बढ़े किंचित प्रसंगांतर करते हुए, गो कि नितांत प्रसंग– बाह्य वह भी नहीं है, संग्रह की अंतिम कविता 'आदि

तुम!' का उल्लेख करना चाहेंगे। 'आदि' खड़से जी के पौत्र हैं। यह कविता उन्हीं की शैशव–क्रीड़ा देख और स्मरण करके उल्लसित पितामह के द्वारा रची गई है। संतान का सुख, उसमें भी पौत्र–पौत्री अथवा दौहित्र–दौहित्री की बाल–क्रीड़ा का सम्मोहन, और अप्रतिम है, परंतु खड़से जी की अकेली एक कविता में आधुनिक भाषाविष्कार की नयी जमीन पर व्यक्त किया गया बिंबधर्मी क्रियाव्यापार और हुमक भी कम निहाल कर देने वाली नहीं है। 'आदि' की 'अें–अें' में खड़से जी को 'दुनिया की अनलिखी,

साहित्य और भाषा में योगदान के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान का गंगाशरण सिंह सम्मान महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल से ग्रहण करते हुए।

स्वर्ग–सुख से कुछ कम नहीं होता। कहावत है– मूल से ब्याज अधिक प्यारा होता है। बाल क्रीड़ा और शिशु को देखकर तो पराए और अनजान व्यक्ति का भी मन मोहित हो जाता है और एक बारगी उस शिशु को गोद में भर लेने, चूमने का मन हो आता है। फिर अपना विकास, अपनी मजबूत होती जड़े देखकर भला किसका मन मुग्ध न होगा ? सूर–तुलसी का वात्सल्य–निरुपण निश्चय ही अनूठा अनसुनी/महान् कविता' सुनाई पड़े और उसमें यह अहसास जगे कि 'डगमगाते हुए/तुम्हारा चलना/ मजबूत कर देता है/घर की डगमगाती/ दीवारों को' तो उनके विरोधाभासी अंदाज पर चमत्कृत होने से अधिक मुग्ध होने को मन चाहता है। उसकी 'अशब्द तुतलाती आवाज' 'घर में/ताल–छंद बो जाती है। घर के बूढ़े होते लोगों की दुनिया फिर हरी हो जाती है। 'मन भूल जाता है–/ ऊबड़–खाबड़

पथरीली अतीत।' 'रिमझिम बारिश की बूँदों–सी' उस शिशु की हँसी 'आसपास को/बना जाती है/ वातानुकूलित।' चिलाते मौसम में आधुनिक सुखी गृहस्थ को वातानुकूलन का स्मरण हो आना सहज ही है। अगर अपनी कनियाँ में खेलते बालक कृष्ण पर नंद न्यौछावर होते हैं तो खड़से जी का यह अनुभव करना भी उतना ही मोद और मुग्धता–बोधक है कि 'जब तुम /उछालते हो/अपने हाथ फूलों–से/मेरी ओर/दुनिया के सारे सुख/बौने हो जाते हैं।'

इस इतने लंबे विवरण के बाद कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि श्री दामोदर खड़से की कविता अपने समय की साक्षी है। समय की अनुगूँज के रूप में वह अपने में वर्तमान के सामाजिक परिदृश्य तथा सरोकारों को सहेजती तथा उनसे रुबरु होती है। अतीत का रोना और भविष्य की ललक, दोनों ही उनके यहाँ नहीं हैं। भरोसा उनका वर्तमान पर है। उसी पर अडिग विश्वास उन्हें भविष्य के प्रति आश्वस्त रखता है। परिणामतः निराशा उनके पास कभी नहीं फटकती। लेकिन सामाजिक सरोकारों को नितांत यथार्थवादी कविता की तरह उनकी कविता में पा लेना भी बहुत संभव नहीं है। वे एक तो उस पर प्रतीकों का, झीना ही क्यों न हो, आवरण डाले रहते हैं, दूसरे, उनका आत्म इतना सजग और उन पर हावी है कि घटना के उभार के बीचोंबीच हस्तक्षेप कर बैठता है और 'तुम' से संवाद–रत हो जाता है, जिससे कविता का स्वर बदला–बदला–सा प्रतीत होने लगता है। 'तुम्हारा वजूद' कविता इसका एक (एकमात्र नहीं) उदाहरण है।

खड़से यथार्थ को अनुभव करते हैं, उसे जीते नहीं। उसे शब्दों में बाँधने की शक्ति उनमें है, उसकी उदग्र आकांक्षा या प्रतिबद्धता नहीं। उनकी कविता का मूल चरित्र वह नहीं है। मूल चरित्र रुहानी या आत्मपरक है। दुर्धर्ष संघर्ष, आक्रामक भाषा, तीखे–तुर्श मुहावरे उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं। वे सहज स्वभावगत अपनी मृदुता नहीं छोड़ सकते। शायद यह इसलिए भी कि आजीविका के सिलसिले में वे जिस प्रशासकीय अनुशासन–बद्धता से गुजरे हैं, सरकारी पदाधिकारी के रूप में वाणी के संयम की जो शिक्षा उन्हें मिली है, जिसके आधार पर उन्होंने अभिजात और सुखी जीवन जिया है उससे विलग होना संभव नहीं है। आश्चर्य नहीं कि धीरता तथा स्वत्व–बोध की रक्षा करते हुए वे सामान्यतः अध्यात्मपरक मानवीयता को ही वरीयता देते हैं। परिणामतः उनकी कविता अधिकांशत आत्मालाप या भ्रमर–गुंजार में बदल जाती है। कविता को गुनगुनाहट तथा फुसफुसाहट मानने में इसी की आत्मस्वीकृति ध्वनित है।

यह आत्मस्वीकृति उनकी सीमा तो हो सकती है, परंतु कवि के रूप में उनकी रचनाशक्ति पर प्रश्नचिन्ह नहीं। कविता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता असंदिग्ध है। विषय के प्रति पक्ष या प्रतिपक्ष का कोई हलफनामा उन्होंने नहीं दिया है। यह पूरे यकीन के साथ कहा जा सकता है कि कविता में उन्होंने जो कुछ कहा है कच्चे अनुभव को अपने अंतर में पिघला कर, अपनी अन्तरानुभूति बन जाने देने के बाद ही कहा है। जितना, जैसा, जो कुछ है, प्रामाणिक है। छद्म नहीं है। सधे वाक कौशल के साथ रूपायित की गई इस अन्तरानुभूति का आस्वाद अलग और विशिष्ट है।

❑❑

दामोदर खड़से : जैसा मैंने देखा

शंकर पुणतांबेकर

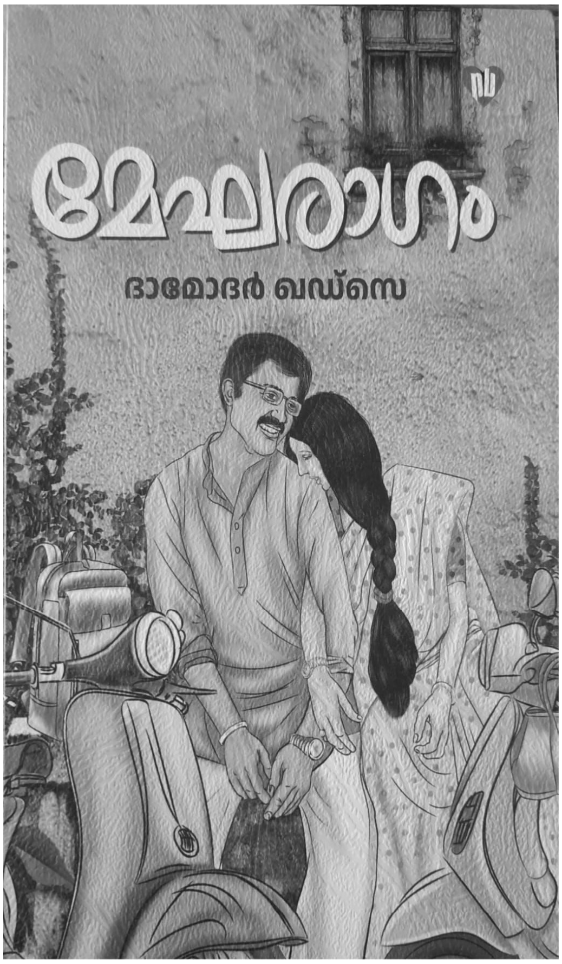

दामोदर खड़से एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। करियर की दृष्टि से वे अध्यापक रहे, ऐसे समय में जब वह अध्यापन के साथ–साथ अध्ययन भी करते थे– ऐसा अध्ययन जो दृष्टि देने के साथ अध्येता को दृष्टा भी बनाता है। यही दृष्टा जब गहरे जाता है तो वह समाज के आदर्श आचरण का धनी बन जाता है, प्रतिभा हो तो साहित्य का सृष्टा। खड़से ने आगे बैंक की हिंदी अधिकारी की नौकरी पकड़ ली। अधिकारी बन जाने के नाते खड़से की पद–प्रतिष्ठा बढ़ी। पद–प्रतिष्ठा जहाँ वरदान है वहाँ अभिशाप भी। अध्यापक और अधिकारी में फर्क यह है कि अध्यापक 'बहुत–कुछ' होता है, जबकि अधिकारी 'बहुत–कुछ पाता' है। 'होना' और 'पाना' ये जमीन–आसमान का फर्क है। होना केवल मंदिर की आरती है जबकि पाने में नैवेद्य है और यह नैवेद्य बड़ी चीज है। यह नैवेद्य इस मायने में अभिशाप है कि यह आरती का अर्थ भूल जाता है– उसका आशय और नैवेद्य के स्वाद में डूब जाता है। धन्य हैं खड़से कि वे स्वाद में नहीं डूबे रहे, आशय को नहीं भूला दिया– जिंदगी के आशय को। तभी एक कवि के नाते वे कहते हैं– इन आँखों में लहलहाती हुई बस्तियों के अवशेष हैं। झुलसे हुए सपनों के निःश्वास और टूटे इंद्रधनुष के खंडित विश्वास हैं। खड़से के करियर की बात कर रहा हूँ मैं। करियर में एक दिन निवृत्त हो जाना पड़ता है। खड़से भी निवृत्ति सौ का अंक हो, हजार का या लाख का उसके एक को छीन लेती है और शेष रह जाता है शून्य। जितना अंक बड़ा उतना शून्य का आधिक्य।

किंतु यह स्थिति उन लोगों की होती है जो करियर को जिंदगी मान लेते हैं और ऐसे 99 प्रतिशत होते हैं, विरला अपवाद। खड़से पर आज मैं कलम चला रहा हूँ, इसलिए कि वे विरला अपवादों में से हैं। उन्होंने बहुत कुछ पाया में अपना 'बहुत–कुछ होना' भुला नहीं दिया। उस अवस्था में भी जब निवृत्ति के पश्चात् वे न केवल महाराष्ट्र राज्य की हिंदी साहित्य अकादमी के कार्यकारी अध्यक्ष बने बल्कि हिंदी को सरकारी–गैरसरकारी संस्थाओं–परिषदों के प्रतिष्ठित सदस्य–सलाहकार–संयोजक बने।

करियर की बात यहाँ समाप्त कर खड़से के सर्जक व्यक्तित्व पर आयें। खड़से का दृष्टा अपने लेखन में भी बहुआयामी है। वे जिस सहजता से गद्य लिखते हैं उतनी ही सहजता से पद्य। कहानी, उपन्यास, संस्मरण, यात्रा प्रसंग जिस समर्थ लेखनी से उन्होंने लिखे हैं उससे भी बेहतर लेखनी से कविता लिखी है। वे भले ही कथाकार के रूप में याद किया जाना पसंद करते हों, पर साहित्यिक पाठक उन्हें कविता से ही अधिक जानेगा, पसंद करेगा। पद्य मन की परछाई अधिक तो गद्य समाज की। मन के राग–द्वेष व्यक्ति–व्यक्ति जितने समान होते हैं उतने समाज के ऊँच–नीच, सहयोग, संघर्ष परिसर–परिसर के समान नहीं, जिस परिसर में व्यक्ति रहता है। यही कारण है कि व्यक्ति मन को परछाई में शीघ्र तादात्म्य पाता है और वह किसी भी परिसर का हो सकता है। मेरे इस कथन से स्वयं खड़से असहमत नहीं हो सकते, क्योंकि वे कहते हैं– कविता सानिध्य का शब्दकोश है। यह सानिध्य व्यक्ति का व्यक्ति से, मन का मन से, अपार व्यक्तियों से, अपार मनों से, मनों के राग–द्वेषों से। 'तुम लिखो कविता' में खड़से कविता का राग आलापते हुए उसके बारे में बहुत कुछ कह जाते हैं– कविता करती है स्पर्श/ जहाँ से मिलती है ऊर्जा/कविता शक्ति विशालता को भी पी जाती है बेहिचक... कविता रुंधे कंठ की/ होली का राग बाँटती है/कटे समय को उसका इतिहास सौंपती हैं/संबंधों की खड़खड़ाहट में स्नेह बाती है कविता... (और जब) आँखें ही बन जाती हैं मुहाना/ज्वालामुखी बहता है चुपचाप/कविता आँखों के आसपास फिरती है/किसी फाटे की तरह।

खड़से ने जो जिया है– भुगता–भोगा है वह उनकी कविता में ही अधिक सजीव और धारदार होकर उतरा है। उनके भुगतने–भोगने का दायरा काफी व्यापक और गहरा है। व्यापकता की दृष्टि से मानवीय और गहराई की दृष्टि से मार्मिक सूक्ष्मता से विचार करें तो पायेंगे कि व्यापकता विषय से होती है तो गहराई शैली से। किसी भी लेखक या कवि के लिए विषय चुनौती नहीं शैली चुनौती है/शैली चुनौती उसकी प्रतिभा को मैं कविता का अधिकृत पारखी न होऊँ तथापि एक सजग पाठक के नाते कह सकता हूँ कि खड़से की शैली–चुनौती में उनकी कवि प्रतिभा के ऐसे दर्शन होते हैं जो लीक से हटकर हैं। मैं अपनी ही दलदल में/धँसा जा रहा था/चारों ओर के कीचड़ में/फँसा जा रहा था/ लोग मुझ पर तरस खाते हैं/तभी सूरज धीरे से मेरे कानों में कहता है–/घबराओं नहीं, तुममें/कमल होने के आसार नज़र आते हैं।

खड़से की कविता के बिंब, प्रतीक, उपयान दृष्टव्य हैं जो उनकी निजी रुचि–प्रकृति और बाहरी जगत के संबंध में बहुत कुछ कह जाते हैं। कतिपय नमूने प्रस्तुत हैं– तुम्हारी उंगलियाँ एक बेचैन कलम (तुम लिखो कविता), आँखों की रक्तिम नदियाँ, पत्थरों में कैद वक्त (अब मैं लौट आया हूँ) द्विमुखी नहीं... दूरदर्शी हो गया हूँ (दूरदर्शी), मानसरोवर चुल्लू हो गया (क्षणिक), गिद्ध गये और चील आई (बहस दो

कौवों की), मैं गौतम तो हो सकता हूँ पर पत्थर का नहीं (अजंता, गौतम और मैं)। इस बिंबों–प्रतीकों के संबंध में डॉ. सुनील देवधर कहते हैं– 'इन बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से युग का सटीक और अद्यतन अन्वेषण खड़से करते हैं।'

अब खड़से के गद्य लेखन का भी कुछ जायजा लिया जाए। इस लेखन के अंतर्गत हम पाते हैं कि, खड़से ने जहाँ कहानियाँ लिखी हैं वहाँ उपन्यास और आत्मवृत्त भी लिखे हैं। मैं यहाँ चर्चा उनके कहानी–लेखन की ही करुँगा। खड़से के अन्य लेखन पर जिसमें अनुवाद भी है स्वतंत्र और दीर्घ चर्चा होनी चाहिए।

कविता व्यक्ति है– व्यक्ति मन, कहानी–उपन्यास परिवार और समाज है। कविता की घनीभूत अभिव्यक्ति हो, पर उसका भावात्मक और विचारात्मक दायरा सीमित होता है, चाहे वह परिवार और समाज की बात करती हो। तभी कविता व्याख्या की मुहताज है। व्याख्या के अभाव में वह जनसाधारण तक पहुँच नहीं पाती और व्याख्या होती है गद्य में। मैं कहानी को कथ्य और पात्रों में कविता की व्याख्या ही मानता हूँ। कवि जब तक आख्यान नहीं पकड़ता वह सामान्य जन की वाणी नहीं बन पाता। इस मामले में उपन्यास सही–सही जन प्रतिनिधि है।

कविता–कहानी–उपन्यास को लेकर एक बात और जो काव्य शास्त्रीय है। उपन्यास अभिधा है। अभिव्यक्ति में सहज–सरल वर्णनात्मकता। सो लोकप्रिय भी अधिक। यहाँ घोड़ा सीधे–सीधे घोड़ा है। कहानी लक्षणा है। सीमित आकार के कारण अपनी वर्णनात्मकता में कविता की मुद्रा भी। यहाँ स्कूटर या कार घोड़ा है। शेष रही कविता व्यंजना है। यहाँ अभिव्यक्ति एकदम हवाई पकड़। पाना आसान नहीं। संदर्भ से ही जाना जा सकता है कि घोड़ा मन है या कुछ और। घोड़ा चंचल, द्रुतगतिवाला, शक्तिशाली। मन भी चंचल, द्रुतगतिवाला, शक्तिशाली।

मैंने उपर्युक्त पंक्तियों को इसलिए रेखांकित किया है कि कवि की प्रतिक्रियात्मक सोच अभिव्यक्ति का विस्तार चाहती है। उसकी प्रतिभा इस सोच को कथात्मक कल्पना का जामा पहनाती है। यह जामा ऐसा कि यथार्थ को धक्का न लगे। साथ ही यह ऐसा भी कि विशिष्ट का साधारणीकरण कर दे, उसे व्यक्ति का न रख सामाजिक बना दे। मैं समझता हूँ कि कवि अपनी सोच को गद्य में विस्तार देकर विशेष संतोष का अनुभव करता है।

डॉ. प्रेम जनमेजय और डॉ. दामोदर खड़से

खड़से के 1980 और 2008 के अंतराल में कोई पाँच कहानी संग्रह निकले हैं जिनमें करीब पचहत्तर कहानियाँ समाविष्ट हैं। कह सकते हैं कितनी परिपक्वता के साथ लिखता है यह लेखक कि वर्ष में केवल पाँच कहानियाँ और पाठक कहानियों में परिपक्वता अनुभव भी करता है। पाठक ही नहीं

समीक्षक भी, नई कहानी ने अपने वैचारिक दल बनाये। खड़से दलवल के चक्कर में नहीं पड़े। साहित्य यदि प्रतिबद्ध है तो मनुष्य से– उसके सुख–दुख से, राग–द्वेष से वह मनुष्य पर होने वाले अन्याय–अत्याचार को उजागर करता है ऐसे कि ढोल न पीटकर भी ढोल पीटता है– दुनियावालों देखो प्रगति की चिकनी सड़क पर वाहन तो तेजी से दौड़े आगे निकले जा रहे हैं, पर प्रगति की यह चिकनाहट पैदल के लिए फिसलन बनी हुई है...

खड़से की कहानियों के ये पात्र–मोहन दीक्षित (लौटते हुए), मानसी (प्यासा इन्द्रधनुष), नंदिनी (बगुले), आदिती (इस जंगल में), श्रवण कुमार (श्रवण कुमार का अंत), आशा देवी (आखिर वह यही थी), दिग्विजय (जन्मांतर गाथा), दिनेश (चुभता हुआ घोंसला), प्राची (गंध), ऋतु (केंकड़ा), ऐसे ही प्रगति की चिकनाहट के शिकार बने हुए हैं।

कहना न होगा कि वे पात्र निम्न और मध्यवर्ग के हैं। प्रगति में भी वर्ग कोई भी हो नारी पुरुष के लिए वहीं साँसभरी वस्तु है। उसकी शारीरिक मानसिक पीड़ा का अहसास स्वयं पुरुष कितना जड़ कि वह नहीं कर पाता। पुरुष से मुक्ति पाकर भी नारी की मुक्ति नहीं है। तभी प्यासा इन्द्रधनुष की मानसी कहती है–"मैंने तलाक ले लिया... किसी स्त्री के लिए यह घटना एसिड के स्नान से कम नहीं है।"

देश की स्वतंत्रता वास्तव में कितनी क्रांतिकारी घटना है। यह वह अवस्था है जिसकी 'व्यवस्था' में हम घर बनाते हैं, बगीचा बनाते हैं, क्रीड़ा मैदान बनाते हैं और बनाते हैं रोटी उगाने के खेत पर स्वतंत्रता के साठ–सत्तर वर्ष के पश्चात् भी क्या ऐसा हो सका ? नहीं। इसलिए कि व्यवस्था का जनतंत्र धनतंत्र बनकर रह गया। नारे का भाईचारा चाराभाई बन गया, न्याय आम (जनता) का पेड़ नहीं रहा खजूर (छाप नोट) का पेड़ बन गया। स्वतंत्रता के पश्चात् देश में तीन काले पैदा हुए– काला पैसा, काला बाजार और काला अंग्रेज। ये काले लोकतंत्र के आधार समानता, मातृभाव और स्वतंत्रता को लील गये। समानता का काला पैसा भातृभाव का काला बाजार और स्वतंत्रता के प्रशासन में बैठे काले अंग्रेज। खड़से के कथा संग्रहों की कहानियों का सामायिक और शासकीय व्यवस्था को लेकर यही स्वर है। वह स्वर कई स्थलों पर तीखा व्यंग्य बनकर उभरा है।

स्वतंत्रता के पश्चात् का मोहभंग पूरी उग्रता के साथ समग्र हिंदी साहित्य में उतरा है जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो यथार्थ जगत का नायक है वह साहित्य जगत में खलनायक चित्रित है– उसका खरा रूप और खड़से की कहानियाँ उसका अपवाद नहीं।

अंत में दो बातों का उल्लेख करना चाहूँगा।

यह कहना उचित नहीं कि खड़से को प्रभाकर माचवे की तरह देखा जाता है। वास्तव में प्रभाकर माचवे व्यक्तित्व के धनी सो उनका व्यक्तित्व बड़ा। इसके विपरीत दामोदर खड़से कृतित्व के धनी सो उनका कृतित्व बड़ा। कृतित्व के धनी बनने में संघर्ष है– संघर्ष जो निखार लाता है।

एक सज्जन (समीक्षक नहीं) की 'कागज की जमीन पर' में यह टिप्पणी कि खड़से के उपन्यास 'काला सूरज' में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अब तक के हिंदी उपन्यासों के लेखन से कुछ जोड़ सकता है– उचित नहीं।

इस पर मैं कहूँगा कि 'गीतांजलि' में ऐसा कुछ नहीं है जो हमारे प्राचीन उपनिषदों की धरोहर में कुछ जोड़ सकता है।

❑❑

साहित्य के श्रीमंत जागते रहें ऐसे ही

बलराम

हिंदी और मराठी में समान अधिकार से कलम चलाने वाले कथाकार दामोदर खड़से को समकालीन साहित्य परिदृश्य में प्रभाकर माचवे की तरह देखा जाता है। हाल ही में उन्हें हिंदी भाषा के विकास में उल्लेखनीय योगदान के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने एक लाख रुपये का गंगाशरण सिंह पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की है। पिछले दिनों 'नवभारत' समाचार पत्र समूह ने भी उन्हें साहित्य सृजन के लिए राम गोपाल महेश्वरी स्मृति सम्मान प्रदान किया। हिंदी भाषी राज्य छत्तीसगढ़ के अंबिकापुर शहर में जन्मे दामोदर खड़से का कर्म क्षेत्र महाराष्ट्र का अकोला शहर ठहर गया तो हिंदी के साथ मराठी भाषा उनके जीवन में कुछ इस कदर रच–बस गई कि वे हिंदी कथाकार–कवि के रूप में तो स्थापित हुए ही, दर्जन भर मराठी कृतियों के हिंदी अनुवाद से दो भारतीय भाषाओं के बीच सेतु भी बन गए। शायद इसीलिए उन्हें महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी का कार्याध्यक्ष बनाया गया है। 11–11–2011 का दिन बच्चन परिवार के लिए यादगार भले ही न बना, लेकिन दामोदर खड़से के जीवन में तो वह यादगार दिन बन ही गया। उस दिन वे तिरेसठ साल के हो गए। पिछले दिनों पहले पुणे और फिर मुंबई जाने पर हमने उनसे टुकड़ों–टुकड़ों में कुछ सवाल कर उनके जवाब हासिल कर लिये। उनसे पहला सवाल हमने यही किया कि इधर क्या लिखा– पढ़ा? सकुचाते हुए खड़से जी ने बताया कि कुछ खास तो नहीं, लेकिन तीन मराठी किताबों का हिंदी अनुवाद किया है, जिनमें से एक अनिल गांधी की आत्मकथा 'मन सर्जन' तो दूसरी शरणकुमार लिंबाले की औपन्यासिक कृति 'झुंड' है। मराठी में बहुचर्चित रही अनिल गांधी

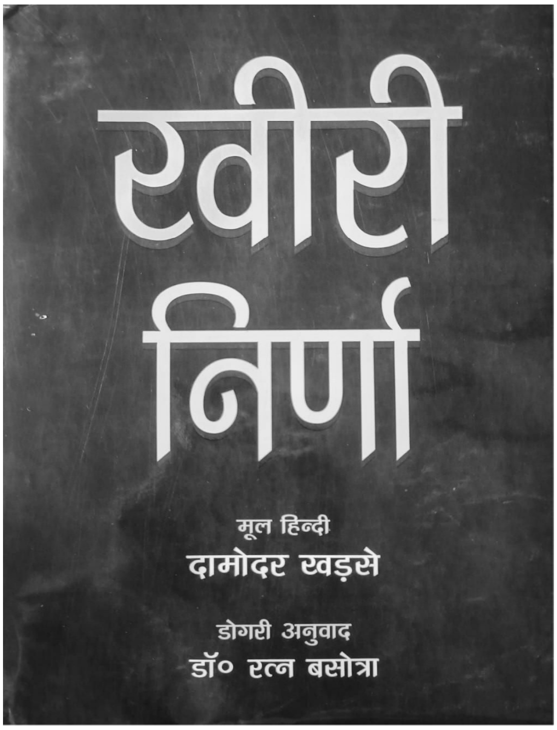

की आत्मकथा 'मन सर्जन' पाठकों को बताती है कि आज के मनुष्य के शरीर को ही नहीं, मन को भी सर्जनी की जरूरत है, क्योंकि वह शारीरिक से अधिक मानसिक रूप से रुग्ण हो चला है। अनिल गांधी महाराष्ट्र के बड़े चिकित्सक ही नहीं, प्रसिद्ध समाजसेवी भी हैं। गरीब परिवार में जन्म लेने के बावजूद वे अध्यवसाय से साध संपन्न हुए और फिर

समाज के लिए जो किया, वह बहुत मूल्यवान है। इसके लिए मराठी समाज में उनका बड़ा मान है।

इसी तरह प्रसिद्ध मराठी दलित लेखक शरण कुमार लिंबाले का उपन्यास 'झुंड' पाठकों को बताता है कि आज के दलित बदले और गुस्से की भावना से भरे हुए हैं, जिसके साथ वे बहुत आगे तक नहीं जा सकते। उन्हें आगे बढ़ना है तो सवर्णों और पिछड़ों के साथ सामंजस्य बिठाकर चलना होगा। प्रतिशोध की भावना से समाज में जहर फैल रहा है। दूसरे के लिए जहर बोते हुए कोई समुदाय अपने लिए अमृत की बूंदों की कल्पना भी कैसे कर सकता है?

दामोदर खड़से अपने अगले अनुवाद के बारे में कहते हैं कि वह सदानंद देशमुख का साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत मराठी उपन्यास 'बारोमास' है, जो भारत, खासकर महराष्ट्र के ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जिसमें लेखक ने बताया है कि किन विषम हालात के चलते देश के किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। तीन कृतियों के अनुवाद के साथ खड़से अपने हिंदी उपन्यास 'मनभावन' को पूरा करने में भी लगे रहे, जिसमें बताया गया है कि पढ़ाई–लिखाई के मामले में स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत आगे निकल गईं तो उनमें आकांक्षाओं का पल्लवन भी स्वतः हो गया, लेकिन पुरुष वर्चस्व वाले समाज में उनकी आकांक्षाओं को खुला आसमान नहीं मिल पा रहा। कदम–कदम पर उनका स्त्रीत्व कुचला जाता है, जिससे स्त्री संवेदनाएँ मर रही हैं। उनके भीतर की नारी जागती है तो मन मुताबिक पुरुष से प्रेम और विवाह करने के लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। सत्ता के केंद्र में पहुँचने पर तो स्त्री की चुनौती बहुआयामी हो उठती है। इसके बावजूद आज की स्त्री हार न मानकर संघर्ष करते हुए नित–निरंतर आगे बढ़ रही है।

दामोदर खड़से की कहानियों का नया संग्रह 'इस जंगल में' भारतीय ज्ञानपीठ ने छापा है। संग्रह की नामधर्मा कहानी 'इस जंगल में' दूरदर्शन द्वारा फिल्मायी गई तो 'तार सप्तक' के कवि हरिनारायण व्यास के जीवन पर दामोदर खड़से ने खुद भी डाक्यूमेंट्री बनायी है। 'सिंधु ताई सपकाल' नाम से एक मराठी स्त्री के जीवन पर उन्होंने लंबा आख्यान लिखा, जो एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जिसने पहले तो भिखारिन बनकर अपने जीवन को बचाया फिर मेहनत और युक्ति से समृद्धि हासिल की। समृद्ध होकर आज वह ग्यारह सौ अनाथ बच्चों को गोद लेकर पाल–पोस रही है। सिंधु ताई के जीवन को आधार बनाकर अनंत महादेवन ने फीचर फिल्म बनायी थी, जिसे राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर के दर्जन भर पुरस्कार हासिल हुए। खड़से की साठ कहानियों का संग्रह भी आ रहा है। उन्होंने अपना जीवन हिंदी और मराठी की सेवा के लिए समर्पित कर दिया है। शायद इसीलिए लोगों ने उन्हें आज का प्रभाकर माचवे कहना शुरू कर दिया।

11 नवंबर, 1948 को अंबिकापुर में जन्मे दामोदर खड़से हिंदी में पीएचडी हैं। भटकते कोलंबस, पार्टनर, आखिर वह एक नदी थी, जन्मांतर गाथा तथा इस जंगल में (कहानी संग्रह), काला सूरज, भगदड़ (उपन्यास), अब वहाँ घोसलें हैं, तुम लिखो कविता, जीना चाहता है मेरा समय तथा सन्नाटे में रोशनी (कविता संग्रह), जीवित सपनों का यात्री, एक सागर और (यात्रावृत्त) आदि दर्जनाधिक मौलिक कृतियाँ तो अछूत (दया पावर), रामनगरी (राम नगरकर), कालचक्र (जयवंत दलवी), पराया (लक्ष्मण माने), ऐसे लोग ऐसी बातें (शिवाजी सावंत), भूले–बिसरे दिन (अरुण खोरे) तथा अपने ही होने पर (विंदा करंदीकर) आदि दर्जनाधिक मराठी कृतियों के अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान आदि से सम्मानित होने के बाद अब केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का लाख टके का गंगाशरण सिंह पुरस्कार उन्हें हासिल होने जा रहा है। मराठीभाषी होने के बावजूद दामोदर खड़से राष्ट्रभाषा हिंदी और

उसके साहित्य के उन्नयन के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखा और अच्छा लिखा है।

दामोदर खड़से की अठारह कहानियों का संग्रह 'इस जंगल में' पढ़कर लगा, कथा लेखन में जैसी सिद्धि उन्होंने हासिल की है, कम कथाकार हासिल कर पाते हैं। उनकी सृजन सिद्धि पर नज़र डालते हुए अच्छा लगता है। कहानियाँ पढ़कर लगता है कि खड़से जैसा रचनाकर्मी अपने समाज, परिवेश और जीवन से उदासीन नहीं रह सकता। वह स्थितियों का विश्लेषण कर उन वजहों की खोज करता है, जिनके कारण समाज में विषमताएँ बढ़ रही हैं। मानवीय मूल्यों का विघटन आखिर क्यों हो रहा है, आदमी–आदमी के बीच अविश्वास की खाई क्यों बढ़ रही है, डॉ. दामोदर खड़से की कहानियाँ ऐसे सवालों का जवाब तलाशते हुए जीवन के प्रति पाठक को सकारात्मक भाव सौंपती हैं। इन कहानियों में घर–परिवार के लोग हैं समाज है, देश–काल है और है समकालीन भारत का जीवंत परिवेश, जो खुद ही बोलने–बतियाने लगता है। किसी भी लेखक के लिए यह गर्व करने लायक बात होती है कि उसके पात्र स्वतंत्र व्यक्तित्व हासिल कर लें और पाठक से अपने आप बतियाने लगें। संग्रह की कहानी 'फिरौती' में बताया गया है कि सत्ता में बैठे लोग डाकू–लुटेरों और गुंडों से कम नहीं। वे भी फिरौती वसूलते हैं। फिरौती वसूलने का उनका तरीका जरा भिन्न होता है। 'तेंदुआ' उनकी प्रतीकात्मक कहानी है, जो बताती है कि खूंखार तेंदुए जंगल में ही नहीं, समाज में भी घात लगाकर छिपे बैठे हैं। मुंबई में अक्सर होने वाली जानलेवा बारिश से जुड़ी कहानियाँ भी इस संग्रह में हैं। "गाज" में झोपड़पट्टी में रहने वाली औरत की कथा है, जिसे इस बात की चिंता नहीं है कि पटरियाँ पानी में डूबी हुई हैं और ट्रेनें घंटों से रुकी पड़ी हैं। वह तो खुश है कि उसे आज ऊपर वाले से पीने का शुद्ध पानी मिल रहा है। 'सुबह तो हुई' में बारिश में फंसी तीन स्त्रियों का भय, ऊहापोह और आशंका चित्रित हुई है। यह कहानी पाठक 'लोकायत' में पढ़ चुके हैं। इनकी एक और अच्छी कहानी 'साहब कब आएँगे' में एक गरीब और सीधी–साधी औरत की दारुण यातना को वाणी मिली है, जिसमें उसके आगे कुछ टुकड़े फेंककर लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उसका इस्तेमाल करते रहते हैं। उसकी मासूम बेटी एक दिन उससे

मॉरीशस में कथाकार चित्रा मुद्गल के साथ

पूछ बैठती है, 'साहब फिर कब आएँगे माँ!' साहब आएँगे तो उसे भरपेट खाना जो मिलेगा। 'बगुले' उन लंपट अधिकारियों की कथा है, जो बड़ी बेशर्मी से महिला सहकर्मियों को अपनी हवस का शिकार बना लेते हैं। 'सीढ़ियों के बीच' मनुष्य के भीतर बैठे उस राक्षस की कहानी है, जो उसे दुष्कर्म के लिए प्रेरित करता है। 'रेत की प्यास' विश्वास–अविश्वास पर टिके पति–पत्नी संबंध को प्रत्यक्ष करती है। बड़ी–बड़ी बातें अनायास ही कह जाते हैं।

डॉ. खड़से की किताब 'जीवित सपनों का यात्री' पत्रकारिता का ऐसा उदाहरण है, जिसे पढ़ते हुए माधवराव सप्रे और बाबूराव विष्णु पराड़कर जैसी विभूतियों की याद हो आती है और याद आ जाते हैं गजानन माधव मुक्तिबोध, जिन्होंने मराठी भाषी होते हुए भी खुद को हिंदी लेखक और पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित किया। ऐसे ही 'जीवित सपनों

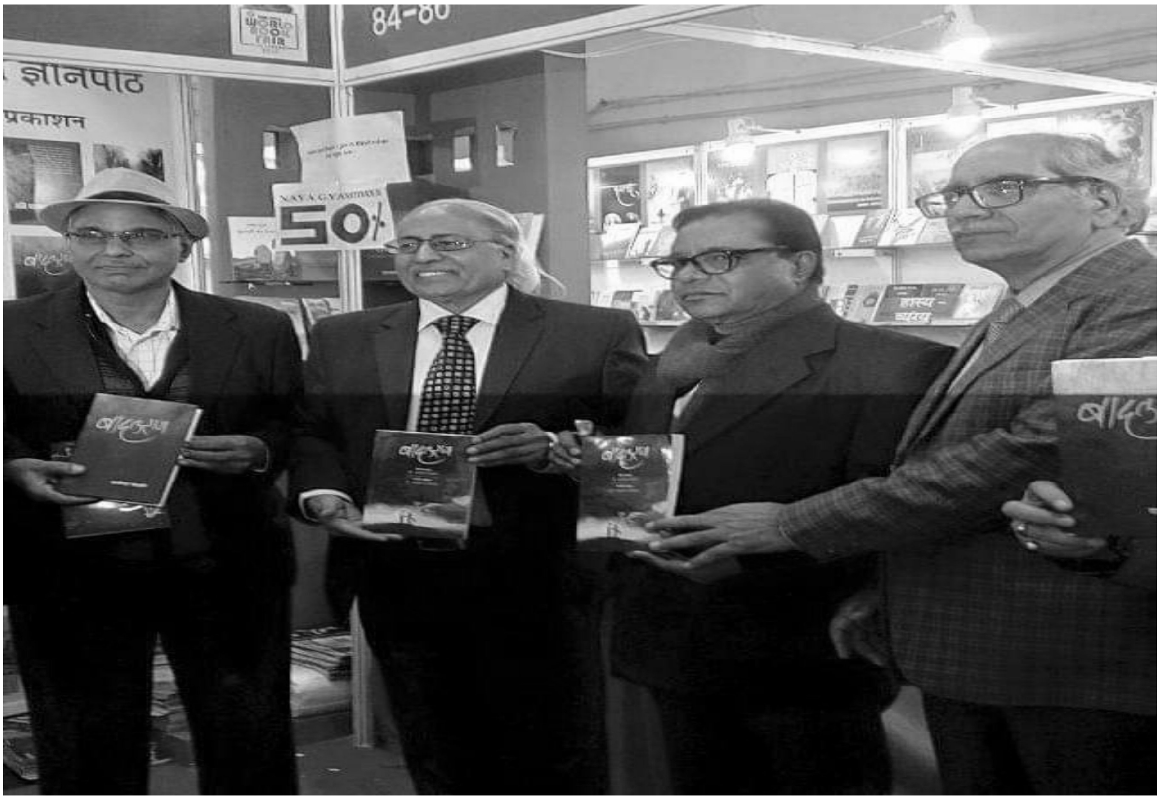

प्रधानमंत्री कार्यालय के मंत्री डॉ. जितेन्द्र सिंह और इस्रो के तत्कालीन निदेशक डॉ. शिवम् द्वारा दामोदर खड़से के पुस्तक का विमोचन।

"छड़ी" पिता की पवित्र स्मृति कथा–सी है। इस तरह देखें तो दामोदर खड़से की कहानियां जटिलता से मुक्त ऐसी कहानियाँ हैं, जिनका शिल्प सहज है और भाषा अत्यंत सरल, जिसके जरिये दामोदर खड़से का यात्री' एक साहित्यकार की पत्रकारिता का आदर्श नमूना है, जिसे हम साहित्यिक पत्रकारिता नहीं कहना चाहते, क्योंकि पत्रकारिता, पत्रकारिता होती है, साहित्यिक–असाहित्यिक जैसा विभाजन

हमें व्यर्थ लगता है। हमारा मानना है कि किसी भी भाषा की पत्रकारिता उस भाषा के साहित्य, उस भाषा समूह की संस्कृति, कला, जन–जीवन, राजनीति और अर्थनीति की मिली–जुली अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए साहित्यिक पत्रकारिता और शुद्ध पत्रकारिता जैसे अतार्किक विभाजन को हम मंजूर नहीं करते। इस विभाजन से किसी व्यक्ति विशेष का हित सधता हो, तो सधता हो, किसी भाषा के साहित्य और उसकी पत्रकारिता का हित कतई नहीं सधता। इस नकली विभाजन को नकारती पत्रकारिता की मिसाल देनी हो तो दामोदर खड़से की कृति 'जीवित सपनों का यात्री' पेश की जा सकती है, जिसमें सामाजिक आंदोलनों, समाजसेवियों, सुधारकों, लेखकों, नाटककारों, अभिनेताओं से लेकर सामान्य और असामान्य स्त्री–पुरुषों के विचार और उनके बारे में बहुमुखी सूचनाएँ दर्ज हैं, जिन्हें इस किताब में संकलित होने से पहले 'नवभारत टाइम्स' तथा 'युगधर्म', 'सारिका' और 'नवनीत' आदि में छपकर चर्चित–प्रशंसित होने का गौरव हासिल हो चुका है। इसे साहित्यिक पत्रकारिता हम तब भी नहीं कहेंगे, हालांकि इसमें साहित्य की भरमार है।

भारत जब आजाद नहीं हुआ था, तब से लेकर बीसवीं सदी तक की पत्रकारिता पर नज़र दौड़ाएँ तो देखेंगे कि वहाँ साहित्यिक रचनाकर्म और पत्रकारिता को अलग–अलग नहीं माना जाता था, जैसा आजकल माना जाने लगा है, जो पत्रकारिता के लिए कोई बहुत शुभ लक्षण नहीं है। महावीरप्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता हो या माखनलाल चतुर्वेदी की, गणेश शंकर विद्यार्थी, बनारसीदास चतुर्वेदी, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, मनोहरश्याम जोशी तथा कमलेश्वर से लेकर नामवर सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजेंद्र माथुर, प्रभाष जोशी, राजेंद्र यादव, प्रभाकर श्रोत्रिय, मंगलेश डबराल, विश्वनाथ सचदेव, केशव, अखिलेश, धीरेंद्र अस्थाना, हरिनारायण, अमरेंद्र मिश्र, संदीप श्रोत्रिय, सूर्यकांत नागर तथा चरण सिंह अभी तक की पत्रकारिता में कहीं भी साहित्यिक–असाहित्यिक जैसा विभाजन नहीं मिलेगा। प्रायः सभी लोगों ने पत्रकारिता को एक सामाजिक–सांस्कृतिक कर्म के रूप में ही देखा और उसे उसी भावभूमि पर उतारने की कोशिश की। दामोदर खड़से की पत्रकारिता भी कुछ–कुछ इसी भावभूमि का स्पर्श करती है। खड़से के प्रति प्रशंसाभाव इसलिए और ज्यादा है, क्योंकि वे मराठीभाषी हैं, बावजूद इसके उन्होंने अपना लेखन हिंदी में संपन्न किया। अपनी जमीन से जुड़े रहकर अगर उन्होंने महाराष्ट्र के जीवन, समाज, साहित्य और संस्कृति पर अपनी कलम चलाई तो विशाल हिंदी क्षेत्र की गतिविधियों पर भी पैनी नज़र रखी। राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय गतिविधियाँ भी उनकी कलम के निशाने पर रही हैं, जिसे उनकी कृतियों में सहज ही पाया जा सकता है। हालांकि हमने दामोदर खड़से से यह सवाल कभी नहीं पूछा कि वे मराठी की बजाय हिंदी में क्यों लिखते हैं, लेकिन मुझे लगता है कि एक हिंदीभाषी कस्बे अंबिकापुर (सरगुजा) में जन्म लेने के कारण हिंदी भाषा शायद उन्हें घुट्टी में घोल कर पिला दी गई थी, जिसने अकोला, नागपुर, मुंबई और पुणे जैसे ठेठ मराठीभाषी नगरों–महानगरों की खाक छानते रहने के बावजूद आज तक उनका पीछा छोड़ा नहीं....

❑❑

"शब्दों का सत संग"-डॉ. दामोदर खड़से

–डॉ. सुनील केशव देवधर

तुम लिखो कविता
और मैं देखूँ जी भरकर
कलम स्याही और कागज पर गुनगुनाता,
जिन्दगी का अनगाया गीत...

जीवन के अनेक अनगाए गीत, जब किसी कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रा वृतांत, संस्मरण, लेख, साक्षात्कार या सहज संवाद में जिस व्यक्तित्व से सुनाई देने लगते हैं, जिसकी कलम से कागज पर उतरने लगते हैं, इस व्यक्तित्व को डॉ. दामोदर खड़से के नाम से साहित्य जगत जानता और पहचानता है। अपने कविता संग्रह 'सन्नाटे में रोशनी' में 'कविता से पहले' शीर्षक से वे अपनी बात रखते हुए लिखते हैं– "केवल प्रतिभा से कोई कलाकार नहीं बन जाता, उसके पीछे किसी ऊर्जामय प्रेरणा की भूमिका होती है, चाहे वह प्रकृति की व्यापक, अंतहीन सार्वभौमिक चित्रकारी हो या मनुष्य की असीम उदारता, प्रेम, समर्पण, आत्मीयता का उदात्त स्पर्श हो,... शब्द और रंग, एक आकृति एक चेहरा पा जाते हैं। वही संवेदना जब कवि और पाठक के बीच संवाद करती है, तब एक अलौकिक समय का जन्म होता है, वह कविता ही होती है।"

केवल इन पाँच–छः पंक्तियों में प्रतिभा, प्रकृति, मनुष्य, संवेदना और सार्वभौमिक आत्मीयता और उदारता, आदि शब्दों को जो आकृति और चेहरा

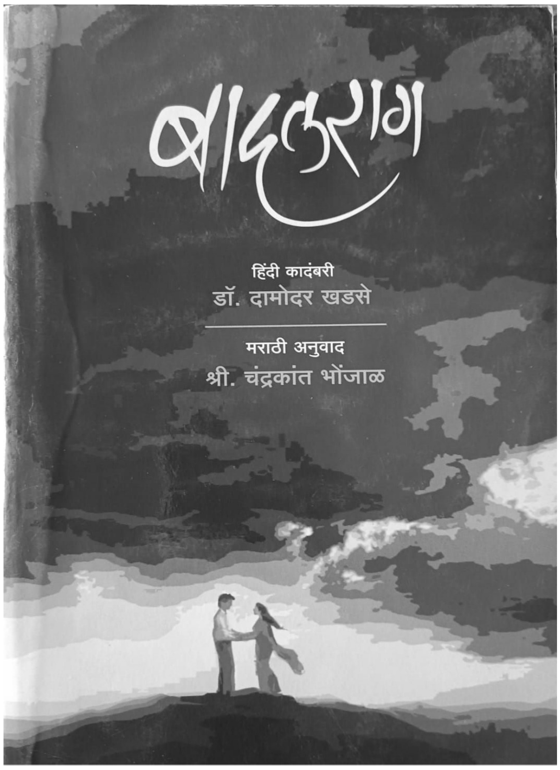

अपनी रचनाओं में, डॉ. खड़से प्रदान करते हैं, उससे ही जिस 'अलौकिक समय' की आवश्यकता समाज को है, वो अलौकिक समय देख पाना संभव है। क्योंकि मनुष्यता की रक्षा में उसकी निरन्तरता में, साहित्य एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

डॉ. खड़से के विषय में साहित्यकार, कवि, लीलाधर मंडलोई कहते हैं– "कहना न होगा, कि कवि इस हिंसक और बर्बर समय के बरबक्स

कविता में प्रेम की स्थापना को एक ऐसी कोशिश के रूप में देखता है, कि इस दुनिया को पुनः सुन्दर और बेहतर बनाया जा सके। पूरी कविता एक महाआख्यान रचने के दरवाजे पर मानो अपने होने का स्वप्न देखती है।"

डॉ. खड़से अपने पाँचों काव्य संग्रहों में इस वक्त के जिस 'रात' के 'सन्नाटे में रोशनी' बोने का प्रयास करते हैं उससे हमारे इस विश्वास को बल मिलेगा कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध जीवन के लिए आवश्यक है। जीवन एक नदी की तरह है और इस जीवन की 'अतीत नहीं होती नदी' को 'नदी कभी नहीं सूखती' के स्वप्न तक हमें ले जाना है तभी समाज रूपी "पेड़ को सब याद है" का सत्य हमें दिखाई देगा।

आज हम बेहद खुदगर्ज़ समय में रह रहे हैं जहाँ हमें अपने अलावा कुछ भी सुनाई और दिखाई नहीं देता और अपने इसी समय के सच को अपनी रचनात्मकता का हिस्सा बनाते हुए, डॉ. खड़से अपनी कथा, कहानियों की रचना करते हैं। वे अपने परिवेश को परखते हैं, मनुष्य के भीतर झाँकते हैं, उसकी भावना, स्थिति, परिस्थिति को पखारते हैं और संवेदना को उभारते हैं, तब एक विश्वास जागता है, कि 'इस जंगल में' कोई एक 'पार्टनर' हो, जो समुद्र में भटकते कोलम्बस की तरह बाद में "जन्मांतर गाथा" बन सके।

वर्तमान समय दृश्य माध्यमों के वर्चस्व का समय है, जिसने एक पाठक को दर्शक में तब्दील कर दिया है, दर्शक जो देखता अधिक है और सोचता कम है। सोच की कमी किसी भी व्यक्ति, समाज के लिए खतरे की घंटी है और इस खतरनाक दौर में, जब शब्द पर भी संकट है और लगता है कि समाज को साहित्य की जरुरत नहीं तब ऐसे जटिल मोड़ पर भी डॉ. खड़से बिना किसी अपेक्षा और रिस्पाँस के लगातार अपनी शब्द यात्रा पर हैं, वे रच रहे हैं, लिख रहे हैं, सिर्फ आज नहीं तो कल के लिए भी मूल्यांकन कल होगा, वो भविष्य तय करेगा, वर्तमान भी भविष्य का संकेत देता है और अपने वर्तमान को डॉ. खड़से ने अपनी दृष्टि और अनुभव से एक दो नहीं, बल्कि 50 पुस्तकों में, विविध रूपों में शब्दबद्ध किया है।

भाषा संवाद के लिए है, एक ऐसा संवाद जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़े मनुष्य की तरह भाषाएँ भी संवाद करती हैं, जब उन्हें कोई संवादक मिल जाता है, तब शब्द के अर्थ खुलने लगते हैं, वे अधिक सहज होकर बतियाने लगते हैं। कहते हैं,– शब्दों के सौन्दर्य को दर्शाता अनुवाद है, दो भाषाओं का आपस में ये प्यारा संवाद है।

एक अनुवाद के रूप में डॉ. खड़से ने हिन्दी और मराठी के बीच जिस संवाद की स्थापना की उससे न केवल हिन्दी का पाठक समृद्ध हुआ बल्कि मराठी का लेखक, रचनाकार भी विस्तृत फलक पर जाना गया। मराठी से लगभग 25 रचनाओं का हिन्दी अनुवाद उन्होंने किया है। यहाँ उनमें से कुछ का उल्लेख इसलिए भी आवश्यक है, ताकि शब्दों की आवाजाही बनी रहे, हिन्दी की जमीन पर मराठी का भाव और विचार सर सब्ज होता रहे। डॉ. खड़से ने दया पवार की कृति 'बलूत' का हिंदी अनुवाद 'अछूत' नाम से किया। रामनगरकर के 'रामनगरी' का इसी नाम से, लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'उपरा' का 'पराया' नाम से, अरुण खोरे की आत्मकथा 'पोरके सिवम' का अनुवाद 'भूले–बिसरे दिन' शरण

कुमार लिम्बाके के उपन्यास 'झूंड' का अनुवाद और सदानन्द देशमुख के उपन्यास 'बारोमासा' का अनुवाद करने के साथ ही डॉ. अनिल देशमुख की आत्मकथा मन–सर्जन का भी आपने हिन्दी में अनुवाद किया। उनके अनुवाद कार्य को देखते हुए जब उनसे ये प्रश्न किया गया कि आपने आत्मकथा और विशेषकर दलित आत्मकथाओं को अनुवाद के लिए चुना तो उनका उत्तर था–''आत्मकथा'' वैसे हर व्यक्ति को आकर्षित करने वाली होती है और ऐसी आत्मकथा जो अलग तरह के लेखन से जुड़े हुए लेखकों की है वो और भी आकर्षित करने वाली बात है। ये जो आत्म कथनात्मक उपन्यास मैंने लिए, उसका कारण यही रहा कि उनका जीवन अपने आप में इस प्रकार का आईना बनकर उनकी आत्मकथाओं में उभरा है, जो निश्चित रूप से साहित्य भी है और जीवन भी है और इन दोनों का मिला–जुला जो रूप रहा वो आकर्षित करता रहा। जहाँ तक दया पवार की आत्मकथा को चुनने की बात है, 'सारिका' में उन दिनों एक कॉलम आया करता था 'गर्दिश के दिन' उस कॉलम में तमाम लेखकों के अपने संघर्ष भरे जो दिन रहे, उनका बयान लेखकों द्वारा किया जाता रहा। दया पवार का बयान जब उस शीर्षक 'गर्दिश के दिन' के अन्तर्गत छपा तो उसके पहले कमलेश्वर जी का ऐसा मानना था कि उसका अनुवाद मैं करूँ। कमलेश्वर जी की सूचना पर मैंने उसका अनुवाद किया। वो अनुवाद वहाँ छपने के बाद एक प्रकार का तहलका मचा न सिर्फ हिंदी साहित्य में बल्कि तमाम दूसरी भाषाओं में भी। इससे दयापवार बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कमलेश्वर से चर्चा की कि अब मैं इसे विस्तार देना चाहता हूँ... और देखते ही देखते उस छोटी सी आत्म रचना ने आत्म कथा का रूप ले लिया। श्री विंदा करंदीकर ज्ञानपीठ से सम्मानित होने के बाद उनकी कविताओं का हिंदी संकलन छपा– अपने ही होने पर। इस संग्रह में 23 कविताओं का अनुवाद डॉ. खड़से द्वारा किया गया है। कविताओं के अनुवाद को लेकर वे अधिक सतर्कता की बात करते हैं, वे कहते हैं कि कविता के अनुवाद न सिर्फ दोनों भाषाओं समान अधिकार होने की आवश्यकता है बल्कि में उसके कविता स्वभाव से जुड़ने की हमारी तैयारी भी होनी चाहिए। इस प्रसंग में आप एक उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं– "मूल कविता है–

"तुम्ही जेव्हां माझा कवितेशी बोलता
तेन्हां माझा शी बोल नका
कारण, माझा कवितेत मी, असेन बराय सा,
बहुधा, पण माझा शी बोलताना मात्र
तुम्हीच असाल, पुष्क कदा।"

यह कुसुभाग्रज की बड़ी अच्छी महीन अभिव्यक्ति को वाणी देने की बात है। इसका अनुवाद इस तरह आया था– जो मूल से बहुत अधिक हट गया है और उसमें बहुत सारे अर्थ परिवर्तन हो गए हैं–

पहली पंक्ति का अनुवाद है– "आप जब कवियों से बातचीत कर रहे होते हैं" तो यहाँ कवियों से बात करने की बात नहीं है। होना ये चाहिए– आप जब मेरी कविता से बतियाते हैं। तब मुझसे न बोले।

दूसरी पंक्ति में भी अर्थ भिन्नता आ गई है। बहुधा के लिए आप ही होंगे 'ज्यादातर' की जगह होना चाहिए अक्सर और पुष्कलदा के लिए 'अधिकतर' तो इस तरह कविता को लेकर अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

स्वयं डॉ. खड़से की कुछ रचनाओं का अनुवाद अल्प भाषाओं में हुआ है, काव्यसंग्रह 'सन्नाटे में रोशनी' का अनुवाद डॉ. गजानन चव्हाण ने किया है, 'प्रकाश परेताना' तुम लिखो कविता का अनुवाद आसावरी काकड़े ने किया तू लिही कविता। चन्द्रकांत भोंजाल ने खंडित सूर्य, कोलहाल (उपन्यास) और कथा संग्रह का मराठी अनुवाद उत्तरायण नाम से किया। इसके अलावा आपकी कई कहानियों का अनुवाद गुजराती, पंजाबी और कन्नड़ भाषाओं में हुआ है।

डॉ. खड़से ने अपनी साहित्यिक विविधता में जिस रचना संसार और सर्जक समाज का 'सम्पादन' किया है, वो उनके व्यक्तित्व का आईना भी है। वर्तमान के मूल्य मापन का पैमाना भी है।

कला और साहित्य की अपनी एक काल चेतना होती है, जो उस समय को रेखांकित करती है। समाज बोध से जुड़ना रचनाकार की जरुरत है और उसकी मजबूरी भी, कथा, कविता या कहें लेखन वह समन्वय है, जिसकी रूप–रचना का आकार व्यक्तिगत या निजी होते हुए भी उसके तत्व सामाजिक हैं। समाज में पसरे तथ्य ही लेखक का कथ्य बनता है। डॉ. खड़से का ताजा उपन्यास 'बादलराग' सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं के साथ देह और मन के आयामों पर भी विचार करता है। मन के पार देह की जरुरतों (माँगों) और उसके परिणामों का भान भी उतना ही जरुरी है। जिसे इस उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इस उपन्यास का मराठी अनुवाद भी चन्द्रकांत भोंजाल ने किया है। कहना होगा कि डॉ. खड़से का लेखन बदलते परिवेश के यथार्थ का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। वे एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं, अपने सामाजिक सरोकारों के प्रति सजग और पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति दक्ष।

हम यह कह सकते हैं– कि दुनियावी आपा धापी से भरे 'कोलाहल' पूर्ण 'इस जंगल में' जहाँ मनुष्य 'भटकते बोलंबस सा' रात के 'सन्नाटे में रोशनी' तलाशता अपने बौद्धिक और मानसिक 'पार्टनर' की तलाश करता है, क्योंकि मनुष्य का मन कुछ ऐसा है जहाँ स्नेह और भावना की 'नदी कभी नहीं सूखती' क्योंकि 'अतीत नहीं होती नदी' और इसीलिए जीवन रूपी नदी के किनारे खड़े मनुष्य रूपी 'पेड़' को सब याद है। वो मनुष्य और प्रकृति के 'संवादों के बीच' की एक महत्वपूर्ण कड़ी है और स्मृतियों का 'एक सागर और' सदा उसके साथ है। जो उसे 'तुम लिखो कविता' कहकर 'जन्मान्तर गाथा' को जीवन के 'उत्तरायण' के लिए 'यादगारी कहानियाँ' बुनने को प्रेरित करती हैं। कोई मनुष्य एक लेखक, कलाकार, चित्रकार के रूप में अपने पीछे बहुत कुछ छोड़ जाता है, जिससे कोई दूसरा कह पाता है 'जीना चाहता है मेरा समय'। इसी समय के साथ अपने–अपने 'संघर्ष' को याद करते हुए लोग 'भूले बिसरे दिन' को एक बार फिर रेखांकित करते हुए 'कालचक्र' से बाहर आकर 'कोणार्क की छाया में' 'सवाल अपना–अपना' लिए 'शुभ वर्तमान' की प्रतीक्षा में 'बारोमास' 'अपने ही होने पर' संवाद करते हैं। अपनी इन्हीं सारी मौलिक अनुदित रचनाओं में डॉ. दामोदर खड़से हमारे साथ हैं, उनके रचना कर्म के लिए अनेक शुभकामनाएँ।

❑❑

अंतर्सत्य को उद्घाटित करतीं: चित्रा मुद्गल

डॉ. दामोदर खड़से

"भूमंडलीकरण, पहचान का संकट, संस्कृतियों का रीमिक्स, क्षरित होते जीवन–मूल्य, घुटन से गुजर रही पीढ़ियाँ, संवेदना का क्षरण, बाजारवाद का दबाव, विश्व–गाँव की परिकल्पना, गलाकाट प्रति–स्पर्धाएँ और अपनी जमीन से उखड़ने का संक्रमण, अन्य विस्फोटक चुनौतियाँ हैं वर्तमान समय की...।"– चित्रा मुद्गल

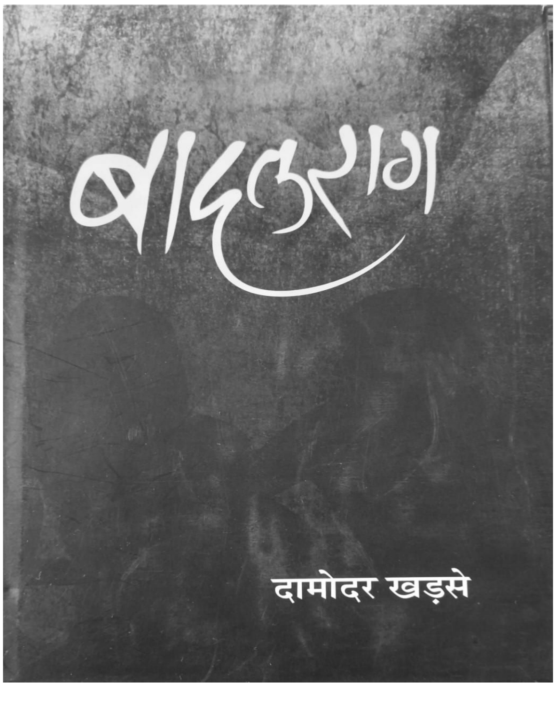

चित्रा मुद्गल अपने कथा–साहित्य में, हमारे वर्तमान की तमाम चुनौतियों से रूबरू होते हुए अंतर्सत्य को उद्घाटित करती चलती हैं। अपनी लंबी कथा–यात्रा में अपने समय, समस्या को खूब रेखांकित करती रही हैं। समाज, परिवार, व्यक्ति की यात्रा में उन्होंने अपने देश–काल को बखूबी शब्दबद्ध किया है। उनकी कहानियाँ समाज से सीधे संवाद करती हैं। मुझे याद है पुणे के इतिहास शोध संस्थान के सभागार में 'प्रेतयोनि' कहानी का प्रस्तुतीकरण था। पुणे की ख्याति प्राप्त उद्घोषिकाओं द्वारा कहानी को बारी–बारी से प्रस्तुत किया जा रहा था। सभागार एकाग्र होकर कहानी में खो गया था। बाद में कथा–पाठ के बाद इस कहानी पर कई प्रतिक्रियाएँ आईं। स्त्री–जीवन के तमाम पहलुओं को कई कोणों से जाना–परखा गया। यह कथा–पाठ अपने आप में बिल्कुल अलग और विशिष्ट था। वैसे चित्रा मुद्गल इस अवसर पर उपस्थित तो नहीं थी, लेकिन कहानी की एक–एक पंक्ति उनकी उपस्थिति का अहसास करा रही थी।

कहानी केवल शब्द–चित्र नहीं होती। वह कोई समाचार संवाहक नहीं होती; बल्कि जब वह धड़कनों में प्रवेश करती है तब व्यक्ति और समाज उसका अविभाज्य हिस्सा बन जाते हैं। पाठक अपने भीतर से उन पात्रों को जीते हैं। समाज अपना ही चेहरा कहानी में देखकर सिहर उठता है। पीढ़ियाँ कितनी भी बदलें, कहानी वर्तमान की दहलीज़ पर खड़ी रहकर झकझोरती रहती है। ऐसी 'प्रेतयोनि' कहानी–सी अनगिनत कहानियाँ चित्रा मुद्गल की कलम से जन्म लेती रही हैं।

कई कहानियाँ घटनाएँ बन जाती हैं और कई घटनाएँ कहानियाँ। लेकिन कुछ कहानियाँ जब ज़िंदा पात्रों को अपने भीतर जन्म देती हैं, तब संवेदना सिहर उठती है। कठोर से कठोर व्यक्ति संवेदना की साँसों का अनुभव करता है, तब स्थितियों के प्रति एक आक्रोश, अपनों से ही उपजही विद्रूपता, आत्म–सम्मान पर लांछन से तिलमिलाहट, टूटते रिश्ते और आत्म–विश्वास के क्षरण के बीच यदि कथाकार पात्र को संजीवनी देने में यशस्वी है तो, उसकी कला, उसका सामर्थ्य, उसके शब्द उपलब्धि के मील के पत्थर बन जाते हैं। चित्रा मुद्गल ने ऐसी उपलब्धियाँ हासिल कीं, मील के अपने ही बनाए निशानों को वे निरंतर लांघती रही हैं। कहानी–दर–कहानी, उपन्यास–दर–उपन्यास उन्होंने विषय बयान और अभिव्यक्ति के ताने–बाने को सतत नया आयाम दिया है। पुणे के उस सभागार में, 'प्रेतयोनि' की एक–एक पंक्ति में श्रोता निःशब्द, भौंचक कहानी की पात्र अनिता गुप्ता के पल–पल का गवाह बन गये।

कहते हैं, कानपुर में दहेज समस्या के कारण तीन बहनें आत्महत्या कर लेती हैं। ऐसी घटनाएँ कथाकार को झकझोर कर रख देती हैं। अक्सर बाहर की यातना से भीतर की यातना अधिक खतरनाक हो उठती है। संभवतः ऐसी ही घटनाओं ने अनिता गुप्ता जैसे पात्र को जन्म दिया। अनिता गुप्ता घर लौटते हुए एक बदमाश की बुरी नज़र से संघर्ष करते हुए खुद को बचाती है। पढ़ी–लिखी है, साहसी है। पुलिस में शिकायत दर्ज कराती है। सही–सलामत घर लौटती है। पर घर के सदस्यों का संदेह, दहशत, बेइज्जती अखबारों की चर्चा, गली–मोहल्ले में काना–फूसी, अफवाहों का डर अनिता को अपने ही घर में कई सवालों के घेरे में ले लेता है। माता–पिता, भाई यानी पूरा घर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की जगह बदनामी के डर से अनिता को पूरी तरह 'बंदी' बना लेता है। उसके कौमार्य पर शंका और गर्भधान रोकने के उपाय तक घरकी सोच चली जाती है। वैसे असलियत सिर्फ अनिता को मालूम है। लेकिन, परिस्थितियों ने घर को ही उसका दुश्मन बनाकर आत्महत्या की ओर धकेलने का विकल्प खड़ा करना चाहा। परंतु, अनिता जीने और संघर्ष के लिए अपने आपको दृढ़ता से तैयार करती है। चित्रा मुद्गल ने इस संघर्ष–कथा का कलात्मक बयान इतनी संवेदनशीलता के साथ किया है कि पाठक स्थितियों की दाहकता को अपनी नसों में जलता हुआ अनुभव करता है। स्थितियों का फंदा और विवेक के संकल्प के बीच चित्रा मुद्गल अपने स्त्री–पात्रों के आत्मविश्वास का यथार्थ–चित्रण बखूबी करती हैं। सहज–स्वाभाविक रूप से एक संदेश, एक विश्वास कहानी पिरोती चलती है।

चित्रा मुद्गल की ऐसी कितनी ही कहानियाँ हैं, जिन्होंने जिंदा पात्रों को मुखर किया है। मन–मस्तिष्क में ऐसे पात्र बरसों से संवाद करते रहे हैं। 'जिनावर', 'गेंद', 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है, 'केंचुल' जैसी कितनी ही कहानियाँ अपने पात्रों से हमें पास–पड़ोस, गली, मुहल्लों, हाट–बाज़ारों, परिचित सगे–सम्बन्धियों से मिलवाती रहती हैं। परंतु, ये पात्र स्थितियों, घटनाओं की कठपुतलियाँ नहीं होते, बल्कि उनके भीतर एक विवेक, आत्मशक्ति, सूझ–बूझ और दृढ़ता होती है। ये सारी बातें ऊपर से कथाकार चित्रा मुद्गल द्वारा थोपी गई नहीं होतीं। वे बयान के ताने–बाने से सहज रूप से प्रस्फुटित होती हैं। इसलिए पात्र सजीव हो जाते

हैं और मन में लम्बे समय तक विचरण करते रहते हैं। बरसों बाद जब चित्रा मुद्‌गल का पुणे आने का कार्यक्रम बना तो एक साहित्यिक संस्था ने उनकी रचना–प्रक्रिया पर लम्बा साक्षात्कार आयोजित किया। इस आयोजन में हिंदी–मराठी के प्रबुद्धजन की भारी भीड़भरी उपस्थिति थी। मुझे यह साक्षात्कार लेने का अवसर मिला और कई–कई कहानियों, उपन्यासों के अंकुरण से पल्लवन तक की प्रक्रिया से रूबरू होने का संयोग मिला।

फिर महासंयोग तब जीवन में आया जब मैं महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में 'राइटर इन रेजीडेंस' के रूप में कुछ महीनों के लिए वर्धा गया। भयंकर गर्मी का मौसम था। निवास की व्यवस्था 'नागार्जुन अतिथि निवास' में थी। पूरा निवास वातानुकूलित। एक दिन सुखद आश्चर्य यह रहा कि कैंटीन में चित्रा मुद्‌गल पधार चुकी थी। उनके आने की खबर तो पहले मिल ही गई थी। अब साक्षात् मुलाकात बहुत सुखद। यहाँ पहले से प्रतिभा राय, बुद्धिनाथ मिश्र के साथ मैं भी था– अब चित्रा मुद्‌गल भी पधार चुकीं। बहुत प्रेरक और उत्साहजनक वातावरण। रोज शाम को चाय, अतिथि निवास के सामने नागार्जुन बाबा की मूर्ति के पास होती। चाय के साथ दुनिया–जहान की बातें। पौराणिक, ऐतिहासिक से आधुनिक पात्रों और वर्तमान समय पर विविध आयामों से लम्बी चर्चाएँ लगभग रोज ही होतीं। फिर इसमें शामिल हुए अरविंद मोहन... पत्रकारिता, वह भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से श्री मोहन के तमाम अनुभव चर्चाओं में राजनीति, समाज और मीडिया के भीतरी हलचलों का खुलासा उनके माध्यम से होता रहता।

इसी बीच मैंने चित्रा मुद्‌गल जी को अपने उपन्यास 'काला सूरज' और 'भगदड़ की प्रति दी। एक दिन दोपहर में वे मेरे कमरे में आईं। उन दिनों मेरी पत्नी सुमित्रा भी कुछ दिनों के लिए वहाँ आई थीं। चित्राजी उन्हें 'वहिनी' के रूप में (यानी भाभी) संबोधित करती हैं। चाय के बाद उन्होंने 'काला सूरज' और 'भगदड़' की चर्चा की। इन उपन्यासों के विभिन्न पात्रों, घटनाओं, स्थितियों पर उन्होंने सूक्ष्म टिप्पणियाँ कीं। मेरे लिए यह गर्व की बात रही कि उन्होंने मेरे ये उपन्यास बारीकी से पढ़े। मैं गौरवान्वित होता रहा और उनका प्रेरक व्यक्तित्व नयी कृतियों के लिए उत्साहित करता रहा। जिस पसंदीदा लेखक को पढ़कर हम सुखद अनुभूति पाते हैं, उनका सान्निध्य मिल जाए तो कितना गर्वीला आनंद मिलता है... इसकी अनुभूति मुझे हो रही थी। जितनी सहजता से उनके कथा–पात्र हमारे भीतरी अंतरंग को छू जाते हैं, उतनी ही सहजता से उनका सान्निध्य कृतार्थ करता रहा। मेरे जीवन का यह केवल सृजन का ही नहीं, प्रेरणा का भी कालखण्ड सिद्ध हुआ। उनकी सदाशयत उनकी टिप्पणी, उनका मार्गदर्शन और सान्निध्य, अक्षय पूंजी की तरह भीतर स्थिर हो गया है।

विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. गिरीश्वर मिश्र, प्रति कुलपति डॉ. आनंदवर्धन शर्मा, कुल सचिव राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, वर्तमान कुल सचिव डॉ. के.के. सिंह आदि के साथ हम सभी निवासी लेखकों का जमावड़ा डॉ. आनंदवर्धन शर्मा के निवास पर होता, जहाँ साहित्य की तमाम गतिविधियों पर दीर्घ चर्चाएँ होती। कभी रचना–पाठ भी होते, कभी चर्चाएँ चित्रा

मुद्गल इन सभी गतिविधियों में निरंतर भाग लेतीं। भोजन के बाद रात के लगभग नौ बजे ये सारा जत्था टहलने निकलता। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र के निवास से आगे कुछ मीटर दूर, ग्राउंड के प्रारंभ तक पहुँचते ही कोई कहता अब 'वाघा चौकी' तक बस... और सब लौट पड़ते। तबसे टहलने की अंतिम सीमा 'वाघा चौकी' घोषित हो गई!

चित्रा मुद्गल विश्वविद्यालय के विभिन्न प्राध्यापकों, शोधछात्रों और अन्य विद्यार्थियों से निरंतर संवाद करती रहतीं। कई बार डॉ. अश्विनी कुमार के साथ उनसे मिलते और विभिन्न साहित्यिक चर्चाओं का वातावरण बनता। वर्धा के राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रधानमंत्री श्री अनंत राम त्रिपाठी जी ने चित्रा जी को मुंबई के कॉलेज में पढ़ाया था। चित्रा जी त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व, स्वभाव, ज्ञान का अक्सर उल्लेख करतीं। अपने गुरुदेव के प्रति उनका श्रद्धाभाव बहुत प्रेरक लगता। एक दिन उन्होंने मुझे अपना नवीनतम उपन्यास 'नाला सोपारा' दिया।

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' चित्रा मुद्गल का उपन्यास जन्मतः शारीरिक कमी से जूझते इन्सान की त्रासदी की सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्ति की व्यथा का बयान है। 'थर्ड जेंडर' का फिलहाल साहित्यिक हल्कों में बहुत चर्चा है, लेकिन तीन वर्ष पूर्व चित्रा जी का यह उपन्यास 'बीच के लोग' की पीड़ा उपेक्षा, अवहेलना और अपनों की ही दुत्कार की कथा–व्यथा है। इस वर्ष इसे साहित्य अकादमी का सम्मान मिला। विलंब से ही सही चित्रा मुद्गल के कथाकार का यह सम्मान उनके पाठकों के लिए गर्व की बात रही है।

इससे पहले 'एक ज़मीन अपनी' में चित्रा मुद्गल को उपन्यासकार के रूप में पाठकों ने स्वागत–स्वीकार कर लिया था, जिसमें उन्होंने अंकिता को केन्द्र में रखकर मॉडलिंग की दुनिया का आख्यान बयान कर स्वाभिमानी स्त्री के संघर्षमय जीवन को उजागर किया है। 'आवां' में मजदूर आंदोलन को विश्लेषित कर शोषित–पीड़ित मजदूरों की कथा–व्यथा है। 'गिलिगडु' में वृद्ध–जीवन की त्रासदी का बयान है। कहानियों की तो लम्बी सूची है। स्त्री–जीवन के अनछुए पहलुओं को उन्होंने रेखांकित किया है। उनके कथा–साहित्य की स्त्रियाँ बहुत स्वाभिमानी, संघर्षशील और विवेकशील हैं।

वर्धा प्रवास के दौरान चित्रा मुद्गल जी का सान्निध्य मेरे लिए अत्यंत प्रेरक रहा। जब लेखन और व्यक्तित्व एक–दूसरे के पूरक हो जाएँ, तब पात्र कालजयी हो जाता है। अपने पात्रों के बारे में चित्रा जी कहती हैं– 'अक्सर जीवित पात्र कल्पना को पंख देते हैं।' संभवतः यही कारण होगा कि उनका हर पात्र यथार्थ रूप में जीवंतता लिए होता है। बेहतरी का सपना हर रचना–धर्मी के मन में होता है। चित्राजी के शब्दों में, 'समाज में कुछ भी बदल नहीं रहा है, लेकिन बदल नहीं सकता, ऐसा सोचना पाप करने जैसा महसूस होता है। अनीति, भ्रष्टाचार–अनाचार अपने रूप नित बदल रहे हैं। भीतर फांस टीसती है। भले ही मैं उस पात्र की छटपटाहट से मुक्त हो चुकी होती हूँ। किसी अन्य पात्र के भीतर दाखिल होने की प्रक्रिया में होती हूँ किंतु संघर्ष से निस्संग होना संभव नहीं होता...।'

❑❑

अंधेरी सुरंग से गुजरता लोक...

डॉ. दामोदर खड़से

समय गतिशील और परिवर्तनशील होता है। इस परिवर्तन की छाया समाज पर पड़ती है। समाज जो व्यक्तियों–परिवारों का समूह है; लोक कहलाता है। इस इक्कीसवीं शताब्दी में समूची दुनिया में परिवर्तन की हवा चल रही है। भूमंडलीकरण, व्यापारीकरण और भौतिकवाद ने आदमी के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। भारत विभिन्नताओं से भरा देश है। आर्थिक स्थितियों में अंतर, गाँव–शहर का भेद, धर्म की विविधता, जाति को लेकर ऊँच–नीच की सीढ़ियाँ, शिक्षा–अशिक्षा, रीति–रिवाज, खानपान भाषा जैसी कितनी ही बातें हैं जो समग्रतः विभिन्नताओं को रेखांकित करती हैं। फिर भी कुल मिलाकर पूरा देश–समाज सांस्कृतिक रूप में गुंथा हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी का लोक अपनी विरासत को कांधे पर रखकर वर्तमान की यात्रा करते हुए बेहतरी के लिए संघर्ष करता है। कोई भी समाज अपने अतीत को झुठलाकर वर्तमान में, भविष्य की योजना नहीं बना सकता, अर्थात्

तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा से केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार का राष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार ग्रहण करते हुए डॉ. दामोदर खड़से।

लोक में काल का अस्तित्व बना रहता है। जनता के व्यवहार, सुख–दुख, संघर्ष, मान्यताएँ, चुनौतियाँ और उसके संस्कार–संस्कृति जैसी सोच का प्रभाव लोक पर पड़ता है। देश की जनता ही लोक है। वर्तमान में इस लोक पर कई प्रकार की स्थितियाँ प्रभाव डाल रही हैं। कई सामाजिक विसंगतियाँ, राजनैतिक असंगतियाँ, आर्थिक दबाव, महंगाई, बेरोजगारी, शोषण और कुरीतियाँ मनुष्य के जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे चुनौती भरे समय में कोविड ने जीवन को झकझोर कर रख दिया है। जीवन–मूल्य दांव पर लग गए हैं, संस्कृति थिर हो गई, मनुष्य ने जैसे हार मान ली हो, किं–कर्तव्यविमूढ़–सा समाज अदृश्य डर से थर्रा गया है।

ठीक सौ साल पहले भारत में ही नहीं सारी दुनिया में, 1919 में एक महामारी आई थी। भारत में करोड़ों लोग इस महामारी के शिकार हुए थे। राजेन्द्रसिंह बेदी ने उस संकट पर एक कहानी लिखी 'कोरन्टीन'। यह कहानी तत्कालीन समाज की लोक–जीवन की भीतरी दास्तां बयान करती है। तब चिकित्सा सुविधाएँ बहुत सीमित थीं। भारत पराधीन था। शासकों की संवेदनशीलता कहीं दिखाई न देती, ऐसे में तत्कालीन समाज का, चिकित्सकों का, मरीजों का जो चित्र उभरकर आता है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाला है। आज चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ जाने के बावजूद कोविड की दहशत ने सबको थर्रा दिया है। समय तो रूकता नहीं पर, प्रगति थम गई है। स्वाधीन भारत में संभवतः यह पहली घटना है, जब जन–जीवन ठहर गया है। लॉकडाउन ने अर्थ–व्यवस्था ध्वस्त कर दी। दिहाड़ी मजदूरों के जीवन में संघर्ष और विवेचना तो पहले भी थी, पर पसीना बहाकर वे दिन काट लेते थे, पर अब तो बेरोजगारी ने सब कुछ छीन लिया। मध्यवर्ग नौकरी गवां बैठा। कइयों की आय आधी रह गई... सारे समाज की सूरत ही बदल गई। लोक–चेतना सुन्न हो गई। इस दौर का लोक बुरी तरह आहत है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, अमीर–गरीब का भेद न देखते हुए जो भी चपेट में आया, वह जाता रहा। लेकिन सबसे बड़ी मार गरीबों पर पड़ी; हमेशा की तरह। चिकित्सा की बुनियादी सुविधाओं से तो वे वंचित हैं ही अब बेरोजगारी ने भी उन पर कहर बरपाया। ऐसी महामारियाँ मनुष्य को सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक और भौतिक रूप से प्रभावित करती हैं। स्पष्टतः वर्तमान जन–जीवन बुरी तरह आहत होता है।

इक्कीसवीं सदी का यह तीसरा दशक समूचे विश्व पर कोविड की काली छाया लेकर आया। हमारा देश प्रगति के महामार्ग पर निकल चुका था, लेकिन इस महामारी ने भयंकर रोड़े बिछा दिए। गति अवरुद्ध हो गई। कई परिवार उजड़ गए। बच्चे अनाथ हो गए। परिवार टूट गए। परिजन बिछड़ गए। पर मन में बैठा रिवाज, लोकमान्यता, सामाजिक रीतियाँ पीछा नहीं छोड़ती और व्यक्ति साहस नहीं कर पाता इससे मुक्त होने का... एक घटना याद आती है– पिता के वर्ष–श्राद्ध लिए अपने गाँव जाने का विचार एक भाई रखता है, जो मुंबई में है। दूसरा पुणे में है। एक साल पहले पिता चल बसे। माँ उनका श्राद्ध करना चाहती है। कोरोना का राक्षस मुँह फाड़े चारों ओर घूम रहा है... भावुकता और परम्परा के चलते यह कार्यक्रम आयोजित हुआ। परिणामतः परिवार के अधिकांश सदस्य कोरोनाग्रस्त हो गए। माँ के मुंबई पहुँचते ही तबीयत बिगड़ी। कहीं अस्पताल में जगह नहीं। बड़ी मुश्किल से पुणे वाले भाई जब मुंबई पहुँचे तो अस्पताल में जगह का जुगाड़ हुआ। फिर दवाइयों की कमी, ऑक्सीजन की किल्लत ऊपर से आर्थिक अव्यवस्था। सब ठीक करके भाई किसी तरह पुणे पहुँचा। पर उसे क्या पता था कि वह कोरोना के साथ लौटा है। पत्नी और बच्चों तक वह पहुँच गया। पत्नी और बच्चे तो

ठीक हो गए पर वह नहीं संवर सका, तमाम प्रयासों के बावजूद। उसे तो यह भी नहीं पता चल सका कि उसकी माँ नहीं रही। क्योंकि उसकी बेहोशी में ही माँ चल बसी थी। कुछ दिन बाद वह भी चल बसा... चारों ओर डर का माहौल अंतिम संस्कार में भी लोग जा नहीं पाए। श्राद्ध के लोकाचार के चलते दो परिवार उजड़ गए। बच्चों ने पिता को खो दिया। 8–10 साल के बच्चों के भविष्य पर क्या गुजरेगी। होनी को कोई नहीं टाल सकता... भाग्यवादी स्वर यथार्थ को झुठलाने की पैरवी कर सकता है, लेकिन सामाजिक रस्मों–रिवाज के सामने असमय इन दो परिवार–सदस्यों का दुनिया से जाना अबोध बच्चों को कौन–सा जीवन सौंप गया। आज का लोक पुराने बंधनों को समय के अनुसार नहीं समझेगा तो इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कैसे टलेंगी। बदलती स्थितियों के अनुसार परम्पराओं, सामाजिक रिवाजों, कर्मकांडों और रूढ़ियों को उतारे बिना लोक–जीवन को स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता!

एक से बढ़कर एक हादसे इस कोरोना–काल में चारों ओर बिखरे पड़े हैं। सबसे बड़ा आघात मजदूरों पर पड़ा, जो दूर–दराज़ प्रदेशों में रोजगार के लिए आए थे। कारखाने बंद, रोगजार बंद, फैक्टरियाँ बंद, निर्माण बंद, सब कुछ बंद; रोजी–रोटी बंद। लोग पैदल ही सैंकड़ों किलोमीटर की दूरियाँ अपने गाँव–घर के लिए नाप रहे थे। कई परिवार बच्चों के साथ निकले। कई लोगों ने रास्ते में दम तोड़ दिया। इस नई महामारी ने नये छुआछूत को जन्म दिया– हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को यम का दूत समझने लगा। 'दो गज की दूरी' सामाजिक दूरी बन गई। स्थितियाँ ही ऐसी बनी कि इन्सान–इन्सान के बीच दूरी बनती चली गई। जान है तो जहान है, सच है, लेकिन रिश्ते चरमरा गए। लोग पलायन करने लगे। यह इस दौर का सबसे बड़ा भयानक हादसा रहा। ऐसे सामाजिक जीवन की किसी ने भी कल्पना नहीं की होगी। खासकर महानगरों में रोजी–रोटी कमाकर जब कोई अपने गाँव जाता था, तब गाँव के लोग उसकी ओर कुतूहल और गर्व से देखते। कुछ युवा उम्मीद से देखते कि कभी उनके सहारे ये भी मुंबई में कुछ कमाने लगेंगे। गाँव में लोग उन्हें घेरे रहते। वे भी फूले न समाते और मुंबई के तकलीफ भरे जीवन को भूल जाते। पर अब सब कुछ छोड़कर जब वे गाँव आए तो गाँव के सारे दरवाजे बंद– पता नहीं इनसे मिलने पर कोरोना तो नहीं हो जाएगा!

इस आपदा के काल में कई लोगों ने अवसर की तलाश की है। एक ओर कई डॉक्टरों ने जान की बाजी लगाकर कई लोगों के प्राणों की रक्षा की तो दूसरी ओर कई अस्पतालों ने अनाप–शनाप बिल लगाकर मरीजों से वसूली भी की। दवाइयों, इंजेक्शन, अस्पतालों में बेड तक की कालाबाजारी की खबरें आईं। एम्बुलेंस मिलने की कमी और उसके बढ़े हुए प्रभार की भी चर्चा आती रही। कुल मिलाकर मनुष्यता को शर्मसार करने वाली घटनाएँ यहाँ–वहाँ होती रहीं। समय जब चुनौतीपूर्ण रहा, विसंगत रहा, संकटमय रहा तब कुछ लोगों ने नफा कमाने की तरफ ध्यान दिया। समाज, ऐसे लोगों की धिकारता रहा, पर आँखें मूँदकर वे अपनी जेबें भरने में लगे रहे। आवागमन के साधनों से मनमानी उगाही की गई। गाँवों की चिकित्सा–व्यवस्था भगवान भरोसे छोड़ दी गई। कुल मिलाकर इस महामारी ने जहाँ जन–जीवन अस्त–व्यस्त कर दिया, वहीं कुछ लोग कफनखसोटी से बाज नहीं आए।

ऐसे हाहाकार में समाज के कुछ जागरुक और मनुष्यता से बंधे लोगों का उभरकर आना एक विशेषता रही। पलायन को विवश मजदूरों को अपनी ओर से कई लोगों द्वारा भोजन दिया गया। गाँवों में खाने–पीने की सुविधा दी गई। यह लाभ कुछ ही लोगों को मिल पाया, लेकिन मनुष्यता की रक्षा कुछ लोगों ने की। शहरों में को–ऑपरेटिव सोसायटी

में अपने संयुक्त प्रयासों से जरूरतमंदों को खाना उपलब्ध कराया। कुछ ने आवागमन की व्यवस्था की। रक्तदान शिविर स्थापित किए गए। दवाइयाँ उपलब्ध करायी गईं। समाज में एक ओर जहाँ लूट–खसोट होती रही, वहीं कुछ लोग इस आपदा में मदद के रूप में उभरकर सामने आए। हालांकि ऐसे मददगारों की संख्या बहुत कम रहीं है और महामारी, बेकारी, भुखमरी से परेशान लोगों की संख्या बहुत अधिक रही है। पर समाज पूरी तरह नफाखोरी के गर्त में नहीं समा गया है। हमारे लोक–जीवन में अब भी संस्कारों–संस्कृति का दीपक जल रहा है, भले ही उसकी लौ मंद पड़ गई है, पर वह टिमटिमा तो रहा है, बुझा नहीं है।

समाज वर्तमान में तमाम विसंगतियों के साथ इक्कीसवीं शताब्दी में सांस ले रहा है, शिक्षा का प्रसार तो हो रहा है, पर मनुष्य की भीतरी तहों में कोई उजास दिखाई नहीं देता। आज भी समाज में अध्यात्म के नाम पर छदम बाबाओं के पीछे भीड़ भागती है। ऐश्वर्य से सराबोर ऐसे बाबा भोग–विलास में लिप्त हैं और भोले–भाले लोगों को ठगकर अपने पाँच सितारा 'आश्रम' खड़े कर लेते हैं। लोगों का भावनात्मक शोषण कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। ऐसे ढोंगी बाबाओं की संख्या बहुत बड़ी है। समाज को ऐसे लोगों से सचेत रहना होगा। लेकिन ऐसे 'आश्रमों' में लोगों की भीड़ देखकर लगता है सुख की तलाश में ये लोग शार्टकट की लाइन में खड़े हैं। दरअसल, शिक्षा केवल रोजगार हासिल करने के माध्यम तक सीमित हो गई है, व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में उसकी भूमिका दिखाई नहीं देती। इसीलिए लोग अपने अनिश्चित भविष्य ओर असफलता के खौफ के चलते ऐसे ढोंगी लोगों के चंगुल में फंसकर जीवन में ग्रहण लगा लेते हैं। स्त्रियों का शोषण भी इस चक्रव्यूह में खूब होता है।

समाज को शिक्षित और प्रगल्भ बनाने का जिम्मा जिन पर है; समाज में उनकी स्थिति अत्यंत उपेक्षित है। प्राचीन काल में गुरु का जो स्थान था, वह लुढ़ककर अब केवल नौकरी तक सीमित हो गया है। सम्मानजनक नौकरी नहीं रह गई। शिक्षक ने जब देखा कि समाज ज्ञान को नहीं धन को ही श्रेष्ठ मान रहा है, तब वह ट्यूशन और कोचिंग क्लासेस की ओर मुड़कर लक्ष्मी की उपासना में लग गया। एक पीढ़ी शिक्षकों की असमंजस में फेंस पर बैठी रही, लेकिन अब घोषित रूप में 'कोचिंग' में ही वह यश और लाभ कमाकर समाज में प्रतिष्ठित होने की राह पर चल पड़ा है। सरकार उससे शिक्षा प्रदान करने के लिए एक दिशा, एक सूत्र सौंपे या न सौंपे, पर वह अपेक्षा करती है कि शिक्षक पोलियो निवारण के लिए 'एक बूंद जिंदगी' चुनाव में कर्मचारी के रूप में, जनगणना में समर्पित, कोरोना–टीका लगवाने के लिए लोगों को राजी करने जैसे गैर–शिक्षा के कार्य में पूरी तरह जुट जाए। ऐसे में शिक्षा–दान के कर्तव्य से वह अनायास ही विमुख हो जाता है। दूसरे विभागों की तुलना में कम वेतन, तमाम राजनीतिक कामों का अतिरिक्त बोझ, समाज से उपेक्षित और निरंतर अभावों से जूझता यह वर्ग 'कोचिंग' न करे तो क्या करे। जो लोग गाँव–खेड़ों में यह काम नहीं कर पाते वे नौकरी के साथ–साथ कोई छोटा–मोटा अन्य व्यवसाय अपना लेते हैं। यह वर्तमान का सच है। ऐसी स्थिति में कुछ समर्थ लोग अपने पाल्यों को बेहतर शिक्षा के लिए शहरों में निजी स्कूलों में भेजते हैं। ऐसे में वर्ग–भेद की खाई न बढ़ती तो ही आश्चर्य था। वर्ण–भेद से तो समाज पहले से ही ग्रस्त है।

किसानों की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। कर्ज़ के बोझ तले जीने को वे अभिशप्त हैं। साहूकारों द्वारा शोषण अब भी देखा जा सकता है। विवश होकर तनाव में वह असमय मृत्यु का वरण कर

मुक्ति पाने की कोशिश करता है। हिंदी के प्रख्यात उपन्यासकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' में इस त्रासदी को चित्रित किया है और मराठी के चर्चित कथाकार सदानंद देशमुख ने अपने 'बारोमास' उपन्यास में ग्रामीण भारत की दर्दनाक कहानी बयान की है। प्रेमचंद के 'गोदान' से 'बारोमास' की तुलना की जाती है। इन दो कृतियों के बीच आधी सदी से अधिक का अंतर होने के बावजूद किसानों के

मॉरीशस में कथाकार चित्रा मुद्गल के साथ

जीवन में कोई अंतर नहीं आया। साथ ही, उनकी विवेचना, उनके श्रम, उनके शोषण में कोई परिवर्तन नहीं आया। राजनीति, किसानों को एक मुक्त मतदान के रूप में देखती है। सरकारी योजनाएँ राजधानी में बनती हैं और गाँवों तक पहुँचते–पहुँचते सूख जाती हैं। घोषणाएँ रास्ते में दम तोड़ देती हैं और अगले चुनावों के लिए नये आश्वासनों की एक लम्बी सूची फिर तैयार करने लगते हैं। किसानों की दशा नहीं बदलती।

शहर सरपट विस्तार पा रहे हैं। गाँव उजड़ते जा रहे हैं। समर्थ, कुछ पढ़े–लिखे शहरों का दामन थाम रहे हैं। इससे परिवार चरमरा रहे हैं। शहरों में एकल परिवार रहता है। संयुक्त परिवार बिखरता जा रहा है। आर्थिक खींचतान, सांस्कृतिक मान्यताओं को नज़रअंदाज कर रही हैं। समाज होकर भी व्यक्ति अकेला होता जा रहा है। महानगरों में समाज वर्गों में बंट गया है। निम्न वर्ग अपने अस्तित्व के संघर्ष में डूबा है। मध्यवर्ग अपने जमा–खर्च में लगा है और उच्च वर्ग अर्थगति पर सवार होकर समाज के हर पक्ष को नियंत्रित करता है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक यहाँ तक कि सांस्कृतिक हलचल को भी वह अपने कब्जे में रखना चाहता है। शहरों की पाँच सितारा संस्कृति का वह नियंता बन बैठता है। आर्थिक रूप से देश कितने ही चरणों में विभाजित हो गया है।

सामान्य जन के लिए शहरों की मॉल–संस्कृति व्यक्ति को अपनी चमकीली दुनिया में आकर्षित करती है। विज्ञापनों के घेरे में हैसियत से अधिक इच्छाओं ने जीवन में चादरों की लम्बाई छोटी कर दी और पैर ठिठुरते चले जाते हैं। इसके परिणाम–स्वरूप तनाव, चिंता और त्रासदी में व्यक्ति घुलता चला जाता है। किश्तों और लोन के चलते उसका वर्तमान खिसिया जाता है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण और हर क्षेत्र के विज्ञापन चुंबक की तरह उसे खींचते हैं। हर महीने के जोड़–घटाव के मकड़जाल में वह उलझ जाता है। महानगर के जीवन को अधिकांश लोग इसी तरह पार करते हैं। ऐसे में कोई बड़ी बीमारी या दुर्घटना सारा गणित चौपट कर जाती

हैं। भीड़ के बीच एक गुमनाम जिंदगी बसर होती रहती है। साहित्य, संगीत, कला के नाम पर टीवी के सामने उसकी मौन उपस्थिति उसे सामाजिक होने से रोकती है।

धन–सम्पत्ति ने समाज को पूरी तरह जकड़ लिया है। सम्पत्ति हासिल कर, कमा कर, पसीना बहाकर हासिल करना अनुचित नहीं; सुख–सुविधा का यह माध्यम है, पर लोग अवांछित मार्गों से दूसरे का अधिकार छीनकर हासिल कर सम्पन्न होना चाहते हैं। यह मनोवृत्ति भ्रष्ट मानसिकता को जन्म देती है। आज ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा है। आत्मा जब दुत्कारने लग जाती है, तब धार्मिक स्थलों पर चढ़ावा देकर मुक्त होने की कोशिश करते लोग यहाँ–वहाँ देखे जा सकते हैं। कोई क्षेत्र इससे मुक्त दिखाई नहीं देता। आदर्श का पाठ पढ़ाने की जिम्मेदारी ढोता शिक्षा विभाग इससे सबसे अधिक ग्रस्त है। पिछले दिनों एक समाचार ने समाज को दहला दिया। रातोरात एक प्राथमिक स्कूल की इमारत मलबे में तब्दील हो गई। हेडमास्टर ने रिपोर्ट दी कि बारिश और तूफान से स्कूल धराशायी हो गया। जबकि जेसीबी लगाकर स्कूल को पूरी तरह जमींदोज कर दिया। पहली से पाँचवीं तक कक्षाएँ लगती थीं। दो हजार की इस बस्ती में केवल यही एक स्कूल थी। पर सरपंच, पटवारी और हेडमास्टर की मिलीभगत से यह स्कूल गिर गया, ताकि ठेकेदार से मिलकर नये स्कूल के निर्माण के लिए सरकार से अच्छी–खासी मदद वसूली जा सके... आज की इस सदी का ऐसा लोक पिछले सभी भ्रष्टाचारों को पीछे छोड़ गया!

कई मामलों में हम अपनी सराहना करते नहीं थकते और पश्चिमी संस्कृति के प्रति नाक–भौं सिकोड़ते हैं। वैसे हमारी विरासत अच्छी भी होती है। लेकिन पश्चिम के अच्छे उदाहरणों से हमें सीख लेने में कोई हीनता का अनुभव नहीं होना चाहिए। स्कॉटलैंड में स्कॉटिश के एक कवि राबर्ट बर्न तीन सौ वर्ष पहले पैदा हुए। अड़तीस वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। इतनी कम उम्र में इस कवि ने जो लिखा, जो रचा, वह आज भी स्कॉटिश लोगों के मन–मस्तिष्क में जीवंत है। उस कवि का जन्म–स्थान, कृतियाँ राष्ट्रीय धरोहर के रूप में सरकार द्वारा सुरक्षित रखी गई हैं। दस एकड़ की जमीन पर उनका स्मारक बनाया गया है। तमाम प्रदर्शनियों के माध्यम से उनके जीवन और कृतियों

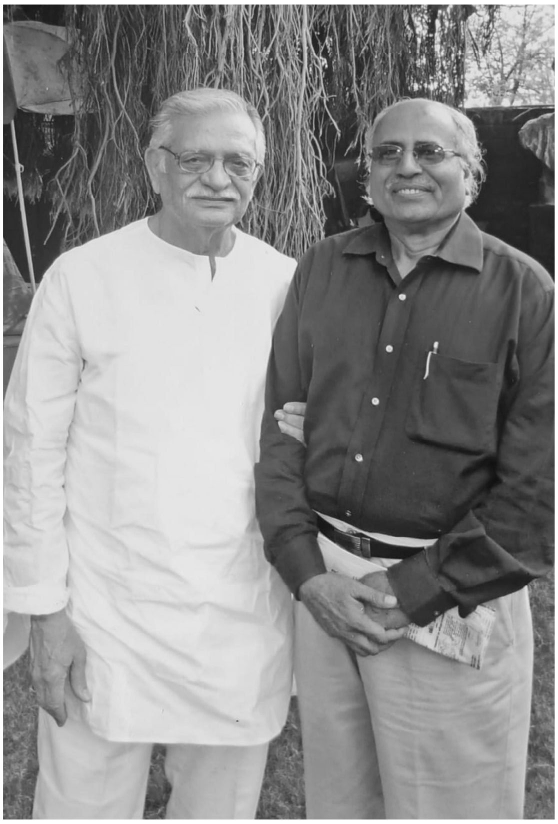

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्री गुलज़ार के साथ

को प्रदर्शित किया गया है। उनकी सारी पुस्तकों का नियमित प्रकाशन इस स्मारक–ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। एक विशाल कैफेटेरिया है, जिसमें लगभग आठ सौ लोग बैठ सकते हैं। दूरदराज़ से नागरिक

यहाँ अपने परिवारों के साथ आते हैं। पुस्तकें खरीदते हैं। कार्यक्रमों में सहभागी होते हैं। वे अपनी नई पीढ़ी तक उस कवि को पहुँचाते हैं। अधिकांशतः स्कूली बच्चों को लेकर उनके पालक सारा दिन वहाँ बिताते हैं। जिस समाज में विद्वानों, दार्शनिकों, लेखकों का सम्मान होता है, उनके चिंतन को आचरण में उतारा जाता है, वह समाज गहरे आत्मबल से भरा होता है। तीन सौ वर्षों तक समाज अपने कवि को समाज–मन में समेटे हुए है, यह धरोहर नई पीढ़ी को भी आत्मशक्ति देती रहेगी।

हर काल में समाज के बीच अच्छे और बुरे का संघर्ष होता रहना है। आज भी है। पर आज असामाजिक को सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती प्रतीत होती है। सम्पत्ति शीर्ष–प्रतिष्ठा हो गई है। इसीलिए व्यक्ति येन–केन–प्रकारेण सम्पत्ति हासिल करना चाहता है। संभवतः इसीलिए सत्ता और सम्पत्ति की सांठगांठ यत्र–तत्र–सर्वत्र दिखाई देती है। 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' की जगह 'सम्पत्ति सर्वत्र पूज्यते' बोध वाक्य की तरह प्रचलित लगता है। यह हमारे समय का सच है।

बावजूद इसके कि अँधेरा घनघोर है, पर दीया जलाना कब मना है। कोरोना काल में बहुत सारे लोगों ने आपदा को 'अवसर' बनाया तो कई लोगों ने भूखों को भोजन भी दिया। कहा जाता है कि साहित्य, संस्कृति, दर्शन में लोगों की रुचि नहीं रही; खासकर युवा–वर्ग में... यह रुचि जगाने का काम कई स्तरों पर किया जा रहा है। पुणे में एक बुक कैफे की स्थापना की गई है। इस कैफे में विभिन्न विषयों की पुस्तकें बड़ी मात्रा में रखी गई हैं। पचास रुपये में एक समोसा की प्लेट, एक चाय उपलब्ध होती है और व्यक्ति कैफे में बैठकर अपनी मनचाही किताब वहीं बैठकर पढ़ सकते हैं। समय की कोई सीमा नहीं है। इस कैफे में शाम को युवा–वर्ग आता है और देश की सामाजिक–राजनैतिक–सांस्कृतिक आदि विषयों पर आपसी विचार–विमर्श करता है।

महाराष्ट्र में महाबलेश्वर और पंचगनी के बीच एक छोटा–सा गाँव है– भिलार इस गाँव को सरकार ने 'पुस्तकों का गाँव' घोषित किया है। भारत में यह पहला प्रयास है और दुनिया में यह दूसरा पुस्तकों का गाँव है। पहला गाँव इंग्लैंड में वर्षों पहले बनाया गया है। 'पुस्तकों के गाँव' भिलार में पचीस घरों में अलग–अलग विषयों पर पुस्तकें रखी गई हैं– कविता, कहानी उपन्यास, नाटक, समीक्षा, इतिहास, शिवाजी–साहित्य, परिवर्तनकारी साहित्य, 'विविध विमर्श' आदि–आदि। इन केंद्रों पर नई, लोकप्रिय, महत्वपूर्ण पुस्तकें हर वर्ष खरीदी जाती हैं। एक केंद्र के लिए पंद्रह हजार की पुस्तकें खरीदी जाती हैं। इन घरों में सरकार की ओर से दो आलमारियाँ, चार कुर्सियाँ, एक टेबल, एक बुक स्टैंड जैसा फर्नीचर भी उपलब्ध कराया गया है। इसी गाँव में एक घर में इससे संबंधित कार्यालय भी खोला गया है। भिलार गाँव के लोग इसका पूरा लाभ उठा रहे हैं।

सकारात्मक परिवर्तन को बहुत समय देना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी के लोक को, भीतरी अच्छे–परिवर्तन के लिए खूब प्रयास करने होंगे, ताकि भावी पीढ़ी को जीवन के आनंदित पहलुओं की ओर आकर्षित किया जा सके। भौतिक सुख–सुविधा के साथ बेहतर मनुष्य के निर्माण की दिशा में कदम उठाने के प्रयास होने चाहिए। कुँअर नारायण के शब्दों में– 'कोई दुःख / मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं है / हारा वही / जो लड़ा नहीं है!'

❑❑

जीवन की नई उद्‌भावनाओं से परिपूर्ण दामोदर खड़से का एक विरल उपन्यास 'बादल राग'।

.सन्तोष खन्ना

दामोदर खड़से एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं जिन्होंने हिंदी में विविध विधाओं में विपुल साहित्य की रचना की है। साथ ही वह एक कुशल अनुवादक भी हैं। उन्होंने 20 से अधिक मराठी कृतियों का हिंदी में अनुवाद भी किया है। दामोदर खड़से के अब तक नौ कविता संग्रह, आठ कहानी संग्रह, 'बादल राग' सहित चार उपन्यास, समीक्षा एवं साक्षात्कार की पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। मराठी के चर्चित उपन्यास 'बारोमास' के हिंदी अनुवाद पर उन्हें केंद्रीय साहित्य अकादमी का अनुवाद संबंधी पुरस्कार भी मिल चुका है। इसके अलावा, उनके मराठी साहित्य के हिंदी में विपुल अनुवाद को देखते हुए भारतीय अनुवाद

मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा राष्ट्रीय हिंदी सेवा सम्मान मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव और संस्कृति मंत्री श्री धर्मेन्द्र सिंह लोधी से ग्रहण करते हुए डॉ. दामोदर खड़से।

परिषद में उन्हें वर्ष 2022–2023 का अनुवादश्री पुरस्कार देने की घोषणा भी कर दी है जो दिल्ली में आयोजित होने वाले एक भव्य समारोह में उन्हें प्रदान किया जायेगा।

डॉ. दामोदर खड़से को उनके इस उपन्यास 'बादल राग', जो वर्ष 2021 में ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ था, पर साहित्य क्षेत्र का प्रतिष्ठित पुरस्कार 'गोयनका हिंदी साहित्य पुरस्कार भी दिया गया है जिसमें उन्हें एक लाख ग्यारह हजार की राशि तथा स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया। इसके अलावा भी उन्हें उनके साहित्य पर कई राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुके हैं जिनमें केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से गंगा शरण सिंह सम्मान और राज्य की साहित्य अकादमी से भी कई पुरस्कार भी शामिल हैं।

दामोदर खड़से जी का 'बादल राग' उपन्यास जीवन में प्रेम की नई उद्‌भावनाओं से परिपूर्ण एक विरल उपन्यास है। यह वस्तुतः मानवीय संबंधों को रेखांकित करता एक वृहद उपन्यास है जिसमें प्रेम के कई रूपों को आकार दिया गया है विशेष रूप से इस नाटक के नायक विकास और सुनिधि के बीच जिस तरह के स्नेहसिक्त प्रेम का वर्णन है वह आज के उपन्यासों अथवा साहित्य में दुर्लभ और विरल ही है। यह आज की शिक्षित नारी और जागरुक पुरुष के बीच का वह संबंध है जो नारी की बनी बनाई रुढ़ छवि के आइने में न देख कर आज की एक शिक्षित नारी की क्षमता, उसकी अस्मिता और उसके स्वाभिमान को पूरे ध्यान में रखते हुए रेखांकित किया गया है।

इस उपन्यास की कथा का ताना–बाना देश के राष्ट्रीयकृत बैंकों में कार्यरत अधिकारियों और कर्मचारियों के इर्द–गिर्द बुना गया है किंतु इस उपन्यास का मुख्य कथ्य इस उपन्यास के नायक विकास और नायिका सुनिधि के जीवन और इन दोनों के आदर्श प्रेम पर आधारित है। इन दोनों के बीच का प्रेम परंपरागत स्त्री पुरुष का प्रेम नहीं, प्रेम की नई इबारत गढ़ता प्रेम है जो देहातीत है। उनके प्रेम को सच्चे अर्थों में प्लाटॉनिक प्रेम की संख्या दी जा सकती है।

वास्तव में इस उपन्यास के कथ्य में सुनिधि के अनेक जीवन संघर्ष हैं। उसका जीवन हर मोड़ पर हर चुनौती का सामने करते हुए अपने को हमेशा संतुलित रखता है। उसका विवाह हुआ था परंतु विवाह में उसके साथ धोखा हुआ। उसे अपने पति का साथ कभी नहीं मिला। ऐसे व्यक्तियों को तो विवाह करना ही नहीं चाहिए जो अपनी पत्नी को किसी प्रकार का पति सुख देने की स्थिति में ही नहीं होते। सुनिधि की सास यशोधरा उसका दुख समझती है किंतु वह एक माँ भी है और चाहती है कि उसके बेटे की गृहस्थी बनी रहे।

सुनिधि हर प्रकार से एक सुदृढ़, शिक्षित, सुभाषित, सुवसना और सक्षम लड़की थी परंतु वह असंभव को संभव नहीं कर सकती थी। उसके विवाहित जीवन में केवल अंधकार ही अंधकार था। बस, एक अच्छी बात यह हुई कि उसकी एक बैंक में नौकरी लग गई और वह वित्तीय रूप से एक स्वायत्त नारी बन गई।

किंतु उसका निजी जीवन निविड़ अंधकार से घिरा था और सामाजिक दकियानूसी परम्पराओं को तोड़ना सुगम नहीं होता। वह ससुराल में रहकर स्वयं को एक कैद में महसूस कर रही थी फिर भी वह

समझौता करने की भरसक कोशिश करती है। बैंक में नौकरी के बाद वह चाहती थी कि वह ससुराल छोड़कर अपने मायके में आ जाए। परंतु जब वह इस इरादे से सुसराल छोड़ कर मायके पहुँची तो माँ ने उसे यह कहकर स्वीकार नहीं किया कि अभी उसकी छोटी बहन का विवाह होना है और अगर वह ससुराल छोड़कर मायके आ गई तो उसे अच्छा घर वर नहीं मिल पाएगा। इस तरह से उसका मायके में भी स्वागत नहीं हुआ और उसका वहाँ भी दम घुटने लगा।

जिस बैंक में उसकी पोस्टिंग हुई थी उसका क्षेत्रीय प्रबंधक विकास था इस तरह वह विकास के संपर्क में आती हैं। विकास को सुनिधि का सभ्य और चुस्त–दुरुस्त व्यक्तित्व बहुत भाता था और वह उसकी तरफ आकर्षित हो रहा था किंतु वह स्वयं विवाहित था अतः अपनी सीमाएँ जानता था। वह अपने व्यवहार में सुनिधि का बहुत हितैषी बन गया और उसे समय–समय पर नेक सलाह देता और उसकी यथासंभव सहायता और सहयोग भी करता। इस तरह सुनिधि में भी बैंक में आने के बाद आत्मविश्वास बढ़ता गया। बाद में सुनिधि ने विकास की सलाह से ससुराल में रहना छोड़ दिया अंततः उसने अपने पति से तलाक भी ले लिया।

बैंक में काम करते हुए सुनिधि ने पहले तो बैंक की आंतरिक परीक्षाएँ पास कर ली। इस तरह उसकी बैंक में प्रमोशन भी हो गई। फिर भी उसने अपनी पढ़ाई जारी रखी और इस तरह उसने बैंक में नौकरी करते–करते सी. ए. की परीक्षा भी पास कर ली और वह समय भी आया कि अंततः मुंबई के एक विदेशी बैंक में ऊँची पोस्ट पर उसे कार्य करने का अवसर मिल गया। वह बैंक के कार्य में एक निष्णात और निष्ठावान अधिकारी तो थी ही, वह समय भी आया जब उस बैंक में ही वह वाइस प्रेसिडेंट बन गई। अब उसके पास सब कुछ था, पद, पैसा और प्रतिष्ठा परंतु जीवन में और बहुत कुछ चाहिए होता है। उसका निजी जीवन एक मरुस्थल से अधिक कुछ नहीं था। बैंक में उसे विकास से भावनात्मक सहारा अवश्य मिला था किन्तु जीवन जीने के लिए भी तो कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। विकास उसको पग–पग पर सलाह दे रहा था कि उसे अब विवाह कर लेना चाहिए। उस विदेशी बैंक में कामकाज के दौरान वह पुनीत नाम के एक ग्राहक के संपर्क में आती है और वह उसे अच्छा भी लगने लगा था और एक दिन वह उससे विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, परंतु उसे समय रहते यह पता चल जाता है कि पुनीत बस पैसा कमाने के चक्कर में अधिक है, इस चक्कर में रिश्तों का महत्व वह नहीं जानता। अतः वह उसके विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए पशोपेश में ही होती है कि अंततः उसे पता चलता है कि एक हवाला केस में पुनीत का नाम आ गया है। इस प्रकार वह विकास से अपने मन की बात बाँटती हुई कहती है कि उसने अकेले रहने का फैसला कर लिया है।

इधर विकास बैंक में बहुत ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठ और परिश्रम से कार्य करता है और बैंक के सभी अधिकारी और कर्मचारी उसका बहुत सम्मान भी करते हैं और वह अपने स्टाफ का हर तरह से ध्यान भी रखता है परंतु उसी बैंक का चेयरमैन एक भ्रष्ट किस्म का अधिकारी है जिसकी उल्टी सीधी माँगे विकास पूरी नहीं करता तो चेयरमैन उसकी

प्रमोशन भी नहीं करता और उसकी बैंक शाखा के अच्छे–अच्छे अधिकारियों को स्थानांतरित कर उनके स्थान पर ऐसे अधिकारियों की पोस्टिंग करता है कि विकास को लगता है कि उनके साथ काम करना कितना कठिन है।

अंततः चेयरमैन के मन मुताबिक काम न करने के कारण विकास की एक ऐसे बैंक में ट्रांसफर कर देता है जहाँ भ्रष्टाचार और कुप्रबंध के कारण कार्य करना बहुत कठिन होता है परंतु विकास इस चुनौती को भी स्वीकार करता है और वहाँ उस बैंक में भी अपने प्रबंध कौशल और ईमानदारी से घाटे की उस शाखा को मुनाफे की शाखा में बदल देता है। उधर उस चेयरमैन के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं तो उसकी ऊँची पहुँच के कारण उसे वहाँ से ट्रांसफर कर एक और अन्य बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक में भेज दिया जाता है।

विकास का अच्छा भाग्य था कि उसका भी समय बदलता है और उस भ्रष्ट चेयरमैन के स्थान पर एक ऐसे चेयरमैन की पोस्टिंग कर दी गई जो एक ईमानदार अधिकारी है। वह विकास के कार्य की प्रशंसा करता है और अब उसका प्रमोशन भी हो जाता है।

चूंकि डॉ. दामोदर खड़से वर्षों तक स्वयं एक राष्ट्रीयकृत बैंक में अधिकारी रहे हैं इसलिए उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से बैंकों के कार्यकरण की वास्तविक एवं प्रमाणिक तस्वीर पेश की है और यह बताने का प्रयास किया है कि बैंकों में भ्रष्टाचार कैसे होता है और बैंकों में हुए घोटालों के समाचार क्यों आते रहते हैं। साथ ही वह इस उपन्यास के माध्यम से यह भी बताना चाहते हैं कि बैंकों में विकास जैसे ईमानदार, कार्यकुशल सुप्रबंधकों और अधिकारियों की भी कमी नहीं जिनके बल पर बैंक तरक्की करते रहते हैं।

उपन्यास में पात्रों के चरित्र चित्रण में उपन्यासकार की कमाल की अंतर्दृष्टि है। वह विकास के माध्यम से बैंकों की कार्य प्रणाली का बड़े विस्तार से विवरणात्मक लेखा–जोखा बताते जाते हैं और विकास को अपनी ईमानदारी और कार्य कुशलता की भी कीमत कैसे चुकानी पड़ती, इसका भी बैंकों के दिन प्रतिदिन के कार्यकरण पर भी विस्तार से प्रकाश डालते हैं। विकास बैंक में प्रतिदिन आने वाली चुनौतियों का कैसे सामना करता है इसका भी विस्तार से वर्णन है। उपन्यासकार बैंक में कार्य प्रणाली के आधार पर ही विकास का सूक्ष्म दृष्टि से चरित्र चित्रण करते हुए उसे बैंक का एक आदर्श बैंक अधिकारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है और सुनिधि के साथ उसका व्यवहार भी उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में प्रस्तुत करता है। विकास एकाध बार सुनिधि के प्रति परंपरागत रूप से कमजोरी अवश्य महसूस करता है जब सुनिधि उसे बताती है कि वह पुनीत को पसंद करने लगी है और शायद उससे विवाह भी कर सकती है तब उसे पुरुषजन्य ईर्ष्या होती है कि उसे लगता है कि अब वह सुनिधि पर एकाधिकार खोने लगा है परंतु वह अपनी इस कमजोरी पर भी जल्दी ही काबू पा लेता है। लेकिन सुनिधि हमेशा उसे अपना फ्रेंड, फिलॉस्फर और गाइड ही समझती है और हमेशा ही वह कहती है कि विकास की वजह से ही उसमें आत्मविश्वास बना रहा है और उसे आगे

बढ़ाने में उसकी सलाह ने ही सहारा दिया है। इस संबंध में मैं यहाँ उपन्यासकार के शब्दों को ही उद्धृत करना चाहती हूँ 'विकास एक प्रेरक इंजन की तरह उसे खींचता, कभी धकेलता तो कभी अपने साथ ले जाता। यौवन का रसायन भी उसके साथ धमनियों में दौड़ लेता। लेकिन कभी सामान्य देह प्रवाह नहीं बहा। कभी सुनीधि ने असुरक्षा की बाढ़ में विकास को पतवार की तरह थामना चाहा था पर विकास की दूरदर्शिता ने भंवर में न सिर्फ स्वयं को बचाया बल्कि सुनिधि को भी संवार दिया।'

सुनिधि ने विकास के साथ अपने संबंधों को उपन्यास में कई स्थानों पर रेखांकित किया है, उपन्यासकार सुनिधि की इन भावनाओं को व्यक्त करने के जिन सधे शब्दों का प्रयोग करता है वह प्रशंसनीय हैं। उन शब्दों का अवलोकन करिये, 'सुनिधि ने यह सीखा कि पुरुष की हर छाया विकास–सी नहीं होती। वह अकेली, सतर्क रहने का गुण विकास के व्यवहार से ही सीख सकी। अब वह अनुभव करती है कि विकास के साथ उसका रिश्ता कई परिधियों से घिरता रहा है। स्नेहा–सान्निध्य की बुनियाद पर उसने बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक जुड़ाव महसूस किया। एक गरिमापूर्ण रिश्ते को उसने दैनिक जीवन में अनुभव किया। शायद ही कोई दिन होगा जिसमें विकास ने उस पर एहसान ना किया हो। रह–रह कर विकास बादल राग की तरह सुनीधि पर निरंतर बरसता रहता है। अब उसके सामने उसका करियर पूरे समय की माँग करता है जिससे वह शिखर तक पहुँचाना चाहती है, सर्वोच्च शिखर तक। इसके लिए उसके सामने कोई समझौता करने का सवाल ही नहीं होता। उसने पूरे समर्पण के साथ इस करियर को जीना शुरू कर दिया था केवल एक राग बादल की विभिन्न घटाएँ लेकर उसके चेतन और अवचेतन में मंडराता रहता और वह है विकास।'

इस उदाहरण से उपन्यासकार के लेखक के रूप में उनकी विशिष्ट छटाये एवं विशेषताएँ सामने आती हैं। उनकी जीवन दृष्टि की सूक्ष्म, सक्षम एवं स्वाभाविक पकड़ से आप अनभिज्ञ नहीं रह सकते। महीन मानवीय भावनाओं का ऐसे दक्ष चितेरा कोई विरल ही हो सकता है। यहाँ इन कारणों से कह सकते है कि उनका उपन्यास महाकाव्यात्मक प्रवृत्तियों की छटा बिखेरता प्रतीत होता है।

कुल मिलाकर उपन्यास में विकास और सुनिधि का चरित्र चित्रण अनुपम ढंग से किया गया है उपन्यास के कथोपकथन भी बहुत चुस्त, गंभीर और रोचक रहे हैं और कथा को आगे बढ़ाने में उनका काफी योगदान है। लेखक ने हर स्थिति, भौगोलिक स्थलों और हर व्यक्ति के बारे में विस्तृत विवरण दिये हैं। वह लेखक के सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों पर भी मजबूत पकड़ का परिचय देता है। कुल मिलाकर 'बादल राग' वर्तमान में लिखे जा रहे उपन्यासों से हट कर एक जमीन का तोड़ सा दिखाई देता है। उपन्यास में सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण प्रभावी भाषा का प्रयोग किया गया है। उपन्यास समाज के हर वर्ग को एक प्रकार से एक नया और स्पष्ट संदेश देता है।

❑❑

ढाई आखर और भ्रष्टाचार का बादल राग

प्रेम जनमेजय

इस उपन्यास का शीर्षक पढ़ा तो मुझे निराला याद आ गए। निराला इसलिए याद नहीं आए कि इस उपन्यास के कथ्य का निराला के जीवन से मुझे कोई संबंध लगा। बहुत पहले पढ़ी निराला की कविता मुझे याद आई जिसका शीर्षक हे, 'बादल राग'। उत्सुकता हुई कि क्या हमारे समय के महत्वपूर्ण कथाकार दामोदर खड़से ने अपने उपन्यास का शीर्षक इस कविता के प्रभाव में रखा है? क्या इसमें निराला की कविता का मूल नहीं तो प्रच्छन्न स्वर है? क्या साम्यवाद की अप्रत्यक्ष राजनीतिक चेतना से संपन्न कथा भूमि पर इस कृति को रचा गया है? यह उपन्यास को बिना पढ़े की जिज्ञासाएँ थीं। हड़बड़ी जिंदगी में अक्सर हम लिफाफा देखकर मजमून भाँपने की कोशिश करते हैं और असफल होते हैं। बाजारवाद के लिफाफे ऐसे हो गए हैं कि आपको मजमून तक पहुँचने ही नहीं देते हैं और आपको अपनी गिरफ्त में लेकर दिग्भ्रमित करते हैं। दामोदर खड़से बाजारवाद की रैंकिंग और बेस्टसेलर से निर्लिप्त लेखक हैं। दामोदर खड़से की रचना भूमि वायावी नहीं है अपितु एक यथार्थवादी आधार पर टिकी है। उनके लिफाफे कम सुंदर हो सकते हैं पर उसका मजमून सामाजिक सरोकारों से युक्त मानव समाज की बेहतरी के लिए कटिबद्ध सैनिक का है। वे खुली 'खिड़कियों' से पूरा परिदृश्य देखने में विश्वास करते हैं। यही कारण था कि मैंने अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए अपनी पाठकीय खिड़कियाँ खोली और जुट गया निराला के 'बादल राग' की प्रासंगिकता का प्रश्न हल करने।

'बादल राग' को पढ़ा तो जाना कि इस उपन्यास के कथ्य का सीधे–सीधे 'बादल राग' से कुछ लेना–देना नहीं है। और यह भी नहीं है कि यदि आपने निराला के 'बादल राग' को नहीं पढ़ा तो इसके गूढ़ार्थ तक नहीं पहुँच पाएँगे। मैंने क्योंकि उपन्यास पढ़ने से पहले 'बादल राग' को पूरा पढ़ा और उपन्यास पढ़ते समय वह कविता मेरे जेहन में रही अतः मुझे यह 'बादल राग' की मूल चेतना की संवाहक लगी। मैं शुद्ध आलोचक नहीं हूँ और इस कारण हो सकता है कि मेरा कल्पनाशील रचनाधर्मी मन दूर की कौड़ी लाने में अपनी मौलिकता ढूँढ़ने की प्रक्रिया में इस उपन्यास को एक अलग दृष्टि से देखने को बाध्य हुआ हो।

लगभग हर निराला प्रेमी ने 'बादल राग' पढ़ी होगी और जिन्होंने नहीं पढ़ी वे अपने पुस्तकालय से इसे पढ़ सकते हैं। जिन्होंने पढ़ा है और जो पढ़ सकते हैं वे इसके प्रतीक अर्थों को गहरे से समझ सकते हैं। यह एक लंबी कविता है। बादल राग ने मुझे पंचतंत्र की कहानियों–सी उपलब्धि दी। जैसे व्यंग्य में अन्यार्थ महत्वपूर्ण होता है वैसा ही, सामाजिक सरकारों से जुड़ा शिक्षित और संस्कारित करने वाला गूढ़ार्थ, धीरे–धीरे मुझे, मानव समाज को

बेहतर करने वाली सोच के साथ, समृद्ध करता चला गया। यह एक ऐसी प्रक्रिया हे जो धीमी आँच पर पके ज्ञान से आपके विवेक को निरन्तर एक जागृति देती है। मेरी दृष्टि में हर रचना को रचने के पीछे एक लेखकीय सोच और लक्ष्य अवश्य रहती है। निर्भर करता है कि अपनी इस सोच को आप पाठक के मन में कैसे रोपते हैं– किसी बेंटधारी मास्टर की तरह या आत्मीयता से भरी हुई किसी दादी–नानी के किस्से–सी सुखद रचनात्मकता के साथ। ऐसी सुखद रचनात्मकता का आह्वान ही तो पाठक करता है।

'निराला अपने बादल राग' में कहते हैं–

हे उद्दाम!

अपार कामनाओं के प्राण!

कभी दुख–दाह / कभी जलनिधि–जल विपुल अथाह– कभी क्रीड़ारत सात प्रभंजन / बने नयन–अंजन! हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार / शस्य अपार / हिल–हिल / खिल–खिल / हाथ / हिलाते / तुझे बुलाते।

और दूसरी ओर यह रूप भी वर्णित करते हैं– झर झर झर निर्झर–गिरि–सर में / घर, मरु, तरु–मर्मर, सागर में / सरित–तड़ित–गति–चकित पवन में, / मन में, विजन–गहन / कानन में / आनन–आनन में, रव घोर–कछोर– / राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!... जग के दग्ध हृदय पर / निर्दय विप्लव की प्लावित माया– / यह तेरी रण–तरी भरी आकांक्षाओं से / घन, भेरी–गर्जन से सजग सुप्त अंकुर / उर में पृथ्वी के, आशाओं से / नवजीवन की, ऊँचा कर सिर / ताक रहे है, ऐ विप्लव के बादल!... अट्टालिका नहीं है रे / आतंक–भवन।

दामोदर खड़से ने भी तो ऐसा ही 'बादल राग' रचा है। यह ऐसा बादल राग है जो अट्टालिका पर बरसे बादल–सा विप्लव रचना है और शस्य अपार भी है। जैसा मैंने कहा कि इसमें अन्यार्थ रचा गया है, धीमी आँच पर पका ज्ञान आपके विवेक को निरन्तर जागृत करता है। इसमें सुनिधि की अतृप्ति के इर्द–गिर्द बुनी प्रेमकथा–सी लगने वाली कथा, शस्य अपार है तो इसमें विप्लव भी है– भ्रष्टाचार का विप्लव। इन दोनों को जोड़ने वाली एक कड़ी है– विकास। विकास के एक ओर है ढाई आखर के लिए अतृप्त सुनिधि है एवं दूसरी ओर है जग के दग्ध हृदय पर निर्दयी भ्रष्टाचार की प्लावित माया। यह माया ऊँची अट्टालिकाओं में निवास करती है और ईमानदार को आतंकित करती है। इसका मायाजाल निर्झर, गिरी, सर, सागर, आदि सबमें अपने रोर के साथ विद्यमान है।

सुनिधि का जीवन शस्य श्यामला है तो विकास का जीवन ऊँची अट्टालिकाओं के बंद कमरों–सा जटिल। उस पर निरंतर हमले होते हैं। हमले सुनिधि पर भी होते हैं पर उतने भयानक नहीं जितने ऊँची अट्टालिकाओं में कैद रहने को विवश विकास पर। विकास के जीवन में भी नन्हे–नन्हे पौधों'–सी पारिवारिक शस्य श्यामला है जो हिल–हिल उसे निरंतर बुलाती है। विकास की पत्नी प्रीति विकास के दायित्व को समझती है और उसे यथासंभव घर के दायित्वों से मुक्त रखती है। प्रीति बहुत सहजता से न केवल अपनी बेटी गरिमा का पालन–पोषण करती है अपितु उसको यथासंभव घर के दायित्वों से मुक्त रखती है। वह जानती है कि विकास के समक्ष आपसी संबंधों से बड़ी उसके बैंक से जुड़ी दीर्घकालिक चिंताएँ हैं। विकास बैंकिंग की भ्रष्ट व्यवस्था से लड़ रहा है। एक थपेड़ा उसकी सक्रियता छीन लेता है। उसके सामने प्रश्न खड़ा होता है– संघर्ष या पलायन। चेयरमैन के मन का भ्रष्ट आचरण न करने के कारण उस पर अनेक हमले होते हैं। हमलों का मुख्य मकसद भी यह है कि विकास पलायन कर जाए। कोई भी ईमानदार ऐसे समय में टूट सकता है, विकास भी टूटता है। उसका विवेक

डगमगाने लगता है। क्या करे वह का जटिल प्रश्न अपनी तमाम ताकत के सामने उसके समक्ष खड़ा हो जाता है। एक समय ऐसा आता है कि नौकरी या परिवार का द्वंद्व उसे घेर लेता है– "विकास आजकल सोचने लगा है कि एक थपेड़े ने उसकी सक्रियता छीन ली। वह लड़ नहीं पाया। न ही युक्ति से कोई राह निकाल पाया। बिना गलती के ही अगर मालिकों जैसा व्यवहार करने लगे तो... केवल दो ही रास्ते अभी विकास के पास थे। एक समझौता कर ले या अलग हो जाए... अलग होने के बीच परिवार खड़ा है और समझौता में उसका अस्तित्व दांव पर लग जाएगा।" पर वह समझौता नहीं करता है, संघर्ष की राह पर चलता है। उसका मन उचटता है पर वह उस मन के साथ भी अपना संघर्ष जारी रखता हैं वह टूटू मन को जाहिर नहीं होने देता है। बड़ी निर्दयता से वह सुनिधि जैसे अपने विश्वासपात्रों के तबादले करता है। अनेक बार उसे लगता है कि वह प्रभावहीन और एक अर्थों में प्रभाहीन होता जा रहा है। स्थितियाँ उसके हाथ से रेत की तरह फिसल रही हैं। पर वह एक परिपक्व सोच के साथ आगे बढ़ता है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कड़े फैसले लेता है। मन को शांत करने के लिए अपनी जीवन शैली बदलता है। वह देर तक ऑफिस में बैठने लगता है। अपनी टीम बनाने लगता है और अमर कुमार जैसों से सावधानी बरतने लगता है। अपनी हारी हुई लड़ाई स्वयं लड़ता है और जीतता है।

विकास अपनी हारी हुई लड़ाई स्वयं लड़ने और जीतने की सोच सुनिधि को भी देता है। एक अवसाद और अनिर्णय में घिरी सुनिधि को वह आत्मनिर्भर–सा बनाता है। पर शस्य श्यामला सुनिधि की चिंताएँ तो उसकी चिंताएँ बन चुकी हैं। उसके संघर्ष को भी तो उसे अपनत्व का संबल देना है।

विकास और सुनिधि दोनों अपने–अपने संघर्ष जी रहे हैं। यह संघर्ष कहीं एक मोड़ पर मिलने वाले हैं, कहीं पटरी जैसे समांतर चलने वाले हैं और कहीं मात्र निजी हैं। पर इस सबके बावजूद दोनों अक्सर इनको एक साथ साझा करते हुए दिखाई देते हैं। विकास का अनुभव, उसकी परिपक्वता और जीवन के यथार्थ को विश्लेषित करने वाली उसकी दृष्टि सुनिधि के जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होती है, पर सुनिधि ऐसा कम कर पाती है। वह अधिकांशतः अपनी उलझनों में ही उलझी दृष्टिगत होती है। अपने दृढ़ व्यक्तित्व के कारण ही विकास, बिना किसी सहायता के अपने मसले सुलझा लेने में सक्षम है। एक ओर गृहस्थ और अपने कार्यालीय दायित्व में दक्ष विकास, सुनिधि के साथ अपने रिश्तों को सावधानीपूर्वक जी रहा है। संबंधों को लेकर सुनिधि की वह सोच नहीं है जो विकास की है। विकास परिपक्व सोच का व्यक्ति है।

इसका महत्वपूर्ण कारण सुनिधि नंदन के साथ अपने विवाह को अनमेल विवाह मानती है। इस संबंध को बनाए रखने के लिए उसकी सास यशोधरा जो एक बैंक में चीफ मैनेजर है, नदंन को जैसा भी है, अपनी नाक की रक्षा के लिए स्वीकारने का दबाव डालते हैं। यहाँ तक सुनिधि की माँ भी उस पर निरंतर दबाव डालती है। उपन्यास के आरंभ में वह निरंतर अपने आप से लड़ती दृष्टिगत होती है। सुनिधि की लड़ाई में विकास मुख्य हिस्सेदार है पर दो अन्य नारी पात्र हैं जो अपनी सशक्त संघर्षशील स्वतंत्र सोच के साथ जीवन जीने का विचार और ट्रेनिंग सुनिधि को देते हैं। नंदिनी और नियति की सोच सुनिधि से एकदम अलग है। इन तीनों सखियों की लड़ाई का मैदान एक जैसा है और शत्रु भी जैसे एक ही हैं, पर तीनों अपने अलग–अलग हथियारों के साथ अपने तरीकों से लड़ रहे हैं। नंदिनी और नियति ने अपने फैसले लेकर अपना जीवन जीना आरंभ कर दिया है पर सुनिधि अभी भी अपने से लड़ रही है। वह दोनों सखियों से मिलती है, उनकी

जिंदगी जानती है और जानती है उनकी लड़ाई के हथियार पर उनकी युद्ध शैली से सहमत नहीं हो पाती। सुनिधि स्वयं स्वीकार करती है कि वह नंदिनी की तरह अपने फैसलों में निर्विघ्न नहीं है। नंदिनी के फैसले अपने और केवल अपने लिए होते हैं। सुनिधि अलग मिट्टी की बनी थी। नंदिनी है बिन्दास, आजाद और दंबग। दोनों एक दूसरे के कंट्रास्ट हैं। नंदिनी का मानना है– जो दुनिया हमारे हिस्से में आती है, उसमें हमें जीना होता है। दायरे बहुत हैं... तोड़ने की कोशिश तो करनी चाहिए। नहीं तो हम दायरे के हिस्से बन जाते हैं। "इधर वह जब नियति से मिलती है तो उसकी नियति को अपनी नियति बनाने को अस्वीकार करती है। नियति का अतीत तो सुनिधि के वर्तमान से अधिक भयानक रहा हैं वह सुनिधि को बताती है–

"... पर यह शादी टिकी क्यों नहीं?' सुनिधि की जिज्ञासा बढ़ती गयी। उसे नंदिनी के शब्द याद आते रहे कि तू सुनिधि अपने बारे में सोच, नहीं तो तेरा हाल नियति की तरह हो जाएगा। फिर नंदिनी गम्भीर हो गयी थी। सुनिधि की भी हिम्मत नहीं हुई आगे पूछने की। आज नियति खुद सारा कुछ बयान कर रही हैं 'सच कहूँ सुनिधि, शादी टिक जाती, तो मैं न टिक पाती... इतना भयंकर आदमी था। उसने धोखा दिया था हम सबको! उसकी यह दूसरी शादी थी। पहली बीवी तंग आकर भाग गयी थी।... वह मेरी तनख्वाह पर ऐश करता। शराबी था। गुस्सैल बहुत। मैं घर पर माँ की कोई मदद न कर पाती। इसका अफसोस तो रहता मुझे। उसका नाम लेना भी मेरे लिए नरक से गुजरने जैसा लगता है। वह शराब पीकर आता। लगभग रोज़। पैसों के लिए मुझसे झगड़ता। एक भी शब्द कहती तो गुस्से में भला–बुरा कहता। गालियाँ बकता। यहीं वह न रुकता, मुझे पीटता। जब थक जाता और मैं टूट चुकी होती... तब वह जबरन सेक्स करता... छोड़ री, वह एक डरावना सपना था। बस, भगवान का एक ही शुक्र है उससे मुझे कोई सन्तान नहीं हुई...!" नियति ने एक साँस में सारी ठंडी कॉफी गटक् डाली और उसकी आँखें डबडबा आईं।

"मैंने तो सुना था, तुम ज्वाइंट फैमिली में रहती थी..." बहुत डरती–डरती–सी सुनिधि कुछ कह पायी थी।

'हाँ, ज्वाइंट फैमिली थी। मैंने एक दिन अपनी सास से अपनी तकलीफ सुनाई... मुझे लगा कि एक औरत होने के नाते वह मेरी मुश्किलें समझेगी। बहुत छोटे–छोटे कमरे थे घर के। एक कमरे की आवाज दूसरे कमरे में सुनाई दे सकती थी। वह इतनी ऊँची आवाज में चिल्लाता, इतनी जोर से पीटता... पर कोई भी बीच बचाव न करता। उल्टे सास ने मुझे ही कह डाला, 'वह जैसा है, वैसा है। तुम उसे सहना सीखो... इसी में भलाई है...।' नियति के सामने अँधेरा छा गया।

शाम कब की रात में बदल चुकी थी। दोनों का ध्यान नहीं था। सुनिधि उठी और बत्ती जला दी। देखा तो नियति की आँखें पूरी तरह डूब चुकी थीं। वह नियति के करीब बैठ गयी और पीठ पर हाथ फेरने लगी। बस इतना कह पाई, 'शांत हो जाओ नियति... तुमने यह दुःख तो अब पार कर लिया है ... भूल जाओ उस हादसे को कह तो दिया नियति से, पर इस खौफनाक सपने की कल्पना मात्र से वह सिहर उठी और सहज ही अपने बारे में सोचने लगी कि इतनी खतरनाक जिन्दगी उसके हिस्से तो नहीं आई।

सुनिधि के जीवन में नंदन के अतिरिक्त पुनीत जैसे पुरुष भी आते हैं जिनके प्रति वह आकर्षित भी होती है पर उसे विकास जैसा पूर्ण पुरुष नहीं मिलता है। सुनिधि हो या सौम्या ढाई का पूरा अर्थ जानने के लिए मन में जैसे एक जैसे प्रश्न हैं। ढाई आखर को लेकर सुनिधि और विकास जैसों की सोच समझने के

लिए यह प्रसंग पर्याप्त ज्ञानवर्धक है–

'विकास, तुम्हारे लिए प्यार क्या है?' सुनिधि ने विकास की ओर बिना देखे पूछा। वह मूंगबड़ी को खा कम रही थी, निहार अधिक रही थी। पर इस निहारने में उसके भीतर की सूक्ष्म–तरंगें अधिक झंकृत हो रही थीं। विकास ने एक सिप लिया और सुनिधि की ओर देखते हुए बोला, 'प्यार, एक–दूसरे को चाहने के साथ केयरिंग होना है...'

'क्या मतलब?'

'सुख में, दुःख में साथ...!' सुनिधि विकास को निहारती रही। सुनिधि को अपनी ओर निहारते देख पूछ बैठा, 'आज तो तुम इंटरव्यू लेने लगी। क्या बात है... प्रेम पर कोई लेख लिखना है?'

'नहीं, बस यूँ ही।' सलाद से ककड़ी का टुकड़ा मुँह में डालती सुनिधि ने कहा था।

'अच्छा तो बड़ी अच्छी बात तुमने शुरू की। तुमको क्या लगता है, क्या है, प्रेम...?'

छोड़ो, सवाल मेरा था। मुझसे ही उत्तर चाह रहे हो!

ये क्या बात हुई। क्या प्रेम पर बात करने, सवाल केवल स्त्रियों का है?

'ये बात नहीं...।'

'चलो तुमसे मैं कुछ और बातें करता हूँ। विषय तो तुमने ही शुरू किया है। वैसे प्रेम तो प्रेम है। क्या स्त्री, क्या पुरुष... लेकिन सब अपनी–अपनी तरह सोच पाते हैं, कभी जानते हुए, कभी अनजाने ही। सबको अपनी दुनिया और अपना ख्याल होता है। चलो, तुम बताओं प्रेम में देह कितनी और मन कितना होता है?'

'देह को मैं पच्चीस प्रतिशत मानती हूँ...! तपाक से कह दिया सुनिधि ने। फिर उसे कुछ झेंप–सी भी हुई कि इतनी जल्दी कह दिया। क्या सोचकर तो नहीं आई थी; ऐसा तो नहीं लगा।

'फिर पचहत्तर प्रतिशत क्या होता है?'

'अहसास'

अहसास!

'हाँ अहसास... उठते–बैठते, सोते–जागते, चलते–फिरते, खाते–पीते, कामबेकाम, घर–बाहर, यात्रा–बाजार में जब कोई भीतर ही भीतर निरन्तर बतियाता है, बसता है, जीता है और अहसासों में छा जाता है...। है सामने तो कुछ कहा नहीं जाता। नहीं होता है तो कसक जगाता है...!' सुनिधि को लगा कि वह बहुत बोल गयी। ऐसे उसके संस्कार नहीं थे। जीवन में संस्कार ही व्यक्तित्व बनाते हैं। सुनिधि ने कभी भी नहीं सोचा था कि ऐसे विषय पर वह इतना बोल लेगी। तुरन्त, उसने एक प्रश्न उछाला, 'आपको क्या लगता है?'

विकास घंटी को उलट–पुलट रहा था– पर बड़ी सावधानी से कि वह बजे नहीं। 'तुमने कुछ कहा?'... अरे हाँ, तुम मेरे विचार जानना चाहती थी... है न?... उसने सुनिधि की ओर भरपूर निगाह डाली और घंटी की ओर देखता हुआ बोला, 'देह में प्रवेश प्रेम पूरा कहाँ होता है...।'

'अं.ऽ...' सुनिधि अवाक्, ज्यों उसे इस तरह के सीधे उत्तर की उम्मीद नहीं थी।

सुनिधि देह की इयत्ता को नकार नहीं सकते। प्रेम का उदार रूप भी मैं मानता हूँ। पर इन सारी बातों का उद्गम है देह, शरीर! इसको कैसे भूल सकते हैं, खासकर दुनियावी लोग...। कुछ–कुछ सहमति तो सुनिधि की भी थी। पर उसके संस्कार उसे पचीस प्रतिशत से आगे नहीं बढ़ने दे रहे थे!

'अच्छा बाबा, अब अपना गिलास पूरा करो और खाना खा लें।' वह घड़ीदेख रही थी।

विकास और सुनिधि के रिश्तों में एक महत्वपूर्ण 'अकस्मात्–सा आता है। यह विकास के लिए और पाठकों, दोनों की धरती को कंपा देने वाला ऐसा कंपन है जिसके झटके को यदि विकास न संभालता तो उसके जीवन और उपन्यास की पटरी फिसल जाती।

"विकास को कहीं डूबकर सोचते देख सुनिधि ने कहा, 'मैं तुम्हारे परिवार के बीच कभी नहीं आऊँगी। बेटी को मैं बेटी ही समझूँगी। प्रीति जी मुझे समझ लेंगी।' सुनिधि ने विकास का हाथ हाथों में ले लिया।

विकास निःशब्द हो गया। प्रीति क्या समझेगी। बेटी को कैसे समझाएगा नहीं... यह रास्ता गलत दिशा में जा रहा है। एक चुप्पी उन दोनों की बीच रही।

सुनिधि ने जान लिया कि उसने गलत समय पर मन की बात कह डाली। एक लम्बे समय से वह कहना चाहती थी। पर जब डाइवोर्स की बात विकास ने छेड़ दी तो उससे नहीं रहा गया। उसे लगा कि विकास कितना छिटक गया, एक ही बात से। सारी रोमांटिकता एक झोंके से झर गयी। आदर और सम्मान अब भी उसकी आँखों में था। पर इतना काफी नहीं होता जीने के लिए सुनिधि को लगा कि उसने विकास को डिस्टर्ब कर दिया। पर वह आज अपने भीतर की सारी बातें कह देना चाहती थी।

'देखिए, मालूम है आपको परिवार का ध्यान रखना चाहिए। मुझे सब कुछ मान्य है, जैसा आप कहें। मैं अकेली जी लूँगी। शादी से मेरा मन खिन्न हो गया है। फिर कोई जोखिम नहीं उठाना चाहूँगी। बस... एक तमन्ना है जिन्दगी में... 'विकास की ओर देखती, साहस बटोरकर मन की बात कह डाली, मुझे आपसे एक सन्तान चाहिए.... बस। मैं उसे सँभाल लूँगी। कभी परेशान नहीं करूँगी... मैं अलग रह लूँगी... आप जब चाहे, मेरे घर पर आपका स्वागत रहेगा...।' कहकर वह विकास को निहारने लगी। मौन तोड़ने के लिए सुनिधि ने कहा, 'मैं शादी नहीं चाहती। शादी शब्द से मुझे ऊब हो गयी है...।'

"बिन शादी के बच्चा...?"

'क्या हुआ... क्यों नहीं हो सकता... मैं समर्थ हूँ... सामना कर सकती हूँ।' सुनिधि को लगा कि वह अपना पक्ष पुरजोर ढंग से रख रही है। पर वह पक्ष रखने की बजाय रिश्ते में बह जाना चाहती थी।

"स्कूल में बच्चे के पिता का नाम क्या लिखाओगी?"

"अब पिता का नाम लिखवाना जरूरी नहीं, माँ का नाम भी लिखवाया जा सकेगा।" सुनिधि जैसे पूरी तरह तैयार होकर ही आई थी।

'लेकिन दुनिया इतनी आसान नहीं सुनिधि... इतनी अनदेखी अनचीन्ही दुनिया सामने आ खड़ी होती है कि मनुष्य पछताने लगता है। तुम इतनी सुन्दर, पढ़ी–लिखी, अच्छी नौकरी में हो कि तुम्हें अच्छे से अच्छा। फिर तुम्हारे सामने पूरी ज़िन्दगी लड़का मिलेगा...।' विकास कुछ समझाने की मुद्रा में था।'

विकास सुनिधि को न केवल समझाता है अपितु इस फैसले को लेकर अनेक सवाल खड़े करता है और अंततः अपने जीवन मूल्यों, संबधों के प्रति ईमानदारी, अपने दायित्वों आदि के साथ अपना फैसला सुना देता है जो उस समय तो सुनिधि को पसंद नहीं आता है पर बाद में वह इसे मान लेती है और पश्चाताप करती है कि उसने विकास के समक्ष यह प्रस्ताव रखा ही क्यों।

विकास कहता है 'ठीक है, शादी की बात मैं समझ सकता हूँ। पर बच्चा क्यों चाहती हो?' विकास विषय को किनारा देता बोला।

'मैं आपका प्रतिरूप अपने भीतर विकसित करना चाहती हूँ। बस माँ बनकर अपनी पूर्णता मुझे चाहिए... मेरा कोई स्वार्थ, कोई दावा नहीं है। कोई सुरक्षा नहीं चाहिए।' सुनिधि और स्पष्ट करती बोली।

'नहीं सुनिधि... यह सही है कि मैं तुम्हारी ओर खिंचता रहा हूँ। मुझे तुम्हारे पास सुकून मिलता है। सच कहूँ कि मैं अब तुमसे प्यार भी करने लगा हूँ। लेकिन तुम्हारी स्थितियों ने और मेरे हालातों ने यहाँ तक मुझे पहुँचाया है। मैं तुम्हारी इच्छाओं का आदर करता हूँ, लेकिन मैं 'नाजायज' बच्चा इस संसार को नहीं दे सकता। प्रीति के साथ के मानसिक अलगाव की बलि मैं गरिमा को नहीं चढ़ा सकता। मैं इन सारी बातों के लिए अपने आपको असमर्थ पाता हूँ। हम दोस्त हैं... एक–दूसरे की चाह है, इसलिए हमसे जुड़े लोगों की दुनिया को डिस्टर्ब करना बहुत अन्याय करने की तरह होगा। दरअसल मैं यह कहना चाहता था कि तुम जल्दी से दूसरी शादी कर लो। यही एक सही रास्ता है। यही व्यावहारिक और जीवन भर के लिए मुझे ठीक लगता है...'

विकास का एक उदात्त चरित्र पाठकों के समक्ष आता है। सतह से देखने पर यह सुनिधि की कहानी लग सकती है। सामयिक साहित्य में नारी विमर्श को आधुनिक विमर्श घोषित किया जा चुका है जबकि जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में मुख्यतः और अन्य नाटकों में नारी विमर्श को देखा जा सकता है। भारतीय समाज में नारी वंचिता ही रही है पर उसे शक्ति प्रदान करने के लिए सामाजिक सरोकारों और मानवी मूल्यों से जुड़े रचनाकारों ने अपनी कलम की ताकत दी है। दामोदर खड़से ने सुनिधि का चरित्र उसकी कमजोरियों के साथ रचा है। कथा के केंद्र में अपने अनेक अंतर्द्वंद के साथ सुनिधि अक्सर दृष्टिगत होती है। अंत में उसका अकेले रहने का फैसला नारीमन को शक्ति देने वाला विकल्प है। पर उसके फैसलों के पीछे बहुत बड़ा कारक विकास है। दो मोर्चों पर लड़ने वाला विकास ही मुझे दामोदर खड़से की दृष्टि का वाहक लगा है। अतः यह कहानी सुनिधि से अधिक विकास की है।

सामाजिक सरोकारों से जुड़े दामोदर खड़से ने हमारे समय की दो बड़ी चुनौतियों से 'बादल राग' में मुठभेड़ की है। सुनिधि, नियति, यशोधरा, नंदिनी आदि विभिन्न सोच और चरित्रों वाले पात्रों के माध्यम से एक बड़े धरातल पर आज के समय की नारी के विभिन्न शेड्स चित्रित किए हैं। सब अपने–अपने तईं प्रदूषित और भ्रष्ट आचरण संपन्न पितृसत्तात्मक सोच से लड़ रही हैं। दूसरी लड़ाई एक ऐसे अँधेरे की सोच से है जो धीरे–धीरे हमारे समय को न केवल अमानवीय कर रही है अपितु अपने भ्रष्ट आचरण से मानवीय मूल्यों को लील रही है। किसी भी ईमानदार व्यक्ति के लिए यह घुटनभरा माहौल उसमें अवसाद भर पलायन के लिए या तो विवश कर देता है या फिर चौतरफा हमले से इस अभिमन्यु की हत्या कर देता है। विकास ऐसा ही अभिमन्यु जो अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए निरंतर संघर्षरत है। उपन्यास में जहाँ भी भ्रष्टाचारी प्रसंग आए हैं दामोदर खड़से की लेखनी प्रखर हो गई है। उनके पात्र, विकास में चाहे अवसाद या पलायन का भाव जन्म लेता हो पर लेखक ऐसे समय में जुझारू हो जाता है और उसकी भाषा शैली प्रहारक हो जाती है। पिछले दिनों हुए बैंक घोटालों ने हमें शिक्षित कर दिया है कि कैसे छोटे निवेशक का पैसा बड़ा निवेशक लूटता है और इसमें कैसे बैंकिंग व्यवस्था उसकी सहायता करती है। कैसे शीर्ष पर बैठे चेयरमैन घोटालों का षड्यंत्र रचते हैं। चेयरमैन की विजिट की सूचना आते ही वह प्राथमिक हो जाती है और बैंक के शेष काम ...। कोई होटल की बुकिंग में लगा है, कोई ग्राहक सम्मेलन के आयोजन में, कोई नई शाखा के लिए भवन की तलाश में जुटा है। सारा ऑफिस एक ही काम कर रहा है– चेयरमैन की विजिट। आप भी पढ़ें दामोदर खड़से द्वारा 'चेयरमैन विजिट का यह प्रसंग और शिक्षित हों। "चेयरमैन की विजिट के बाद धीरे–धीरे सारे बिल ऑफिस पहुँचने लगे। ऑफिस में

कुछ छिपता नहीं। ज्वेलर्स की दुकान से एक बड़ा बिल आया। सिल्वर की चार कटोरियों के पंद्रह सेट खरीद गए। यह बताया गया था कि शहर में कुछ वीआईपी को डिपॉजिट बढ़ाने में सम्पर्क करने के लिए इसे खरीदा गया है। हर सेट चार सौ ग्राम का था। इसी तरह पन्द्रह पशमीने की शाल का भी बिल था। एक–एक शाल नौ हज़ार की थी। हर खरीद में चैयरमैन का पी.ए. साथ होता, ताकि साहब की पसन्द से सब ठीक हो। विकास कभी ऐसी खरीद में शामिल न होता। ऑफिस का जोशी इस काम में आगे होता।

बिल का पेमेंट तो हो गया पर चौंकानेवाली एक बात धीरे से विकास को मालूम हुई कि पी.ए. ने सारे चाँदी के सेटस् और शाल उसी दुकान को लौटा दिए थे और नकद पैसे ले लिए थे। तब उसे ध्यान आया कि कार्यक्रम के समय और लंच टाइम में पी. ए. कहीं दिखाई क्यों नहीं दिया। चेयरमैन को उसकी जरूरत भी नहीं पड़ी... अजीब संयोग था... पर अब उसे काफी कुछ साफ नज़र आ रहा था।

इसी बीच जोशी भी एक बिल लेकर आया, जिसे जोशी ने अपने क्रेडिट कार्ड से चुकाया था। जोशी ने बताया कि पी.ए. ने फरमाइश की थी कि साहब के लिए कुछ शर्टस् और मैडम के लिए कुछ साड़ियाँ चाहिए थीं। क्रेडिट कार्ड से खरीद कर दे दिए थे सर। विकास ने देखा था कि एक नयी और महँगी शर्ट जोशी ने भी पहन रखी थी। बिल तो मंजूर करने ही थे।

इसके अलावा रिजन की ओर से चाँदी की कुछ वस्तुएँ भेंट स्वरूप दी ही गयी थीं। क्लाइंट ने पता नहीं क्या–क्या दिया... विकास खीझ रहा था, पर क्या करता। ऐसा तो कई बार करना ही होता है। फिर महत्वपूर्ण ग्राहकों और शहर के खास लोगों के लिए जो कॉकटेल डिनर रखा गया था, सो अलग। पर ऐसी व्यवस्था तो आम तौर पर करनी ही होती है। कमर्शियल संस्थाओं में यह प्रावधान तो होता है, लेकिन इसकी आड़ में सम्बन्धित लोगों में उड़ा ले जाने की प्रवृत्ति बहुत बड़ी मात्रा में होती है। विकास इसे समझता है। पर जोशी जैसे लोगों की जरूरत व्यवस्था को हमेशा ही रहती है। हर जगह तो वह पहुँच नहीं सकता। पर इस बार वस्तुएँ लौटाकर पी.ए. की हरकत बहुत चौंकानेवाली और खीझ पैदा करने वाली थी। इस चेयरमैन के केवल दो महीने बचे हैं। जाने से पहले प्रमोशन प्रोसेस पूरी करके ही जाएगा। उसने तो यह भी सुन रखा था कि एक रिजनल मैनेजर ने फोर्ड आइकॉन कार बतौर भेंट दी और चेयरमैन के दिल्ली के बंगले पर पहुँचाने की व्यवस्था भी कर दी।

इस उद्धरण से चौंके नहीं क्योंकि यह तो हर सरकारी/गैरसरकारी भ्रष्ट व्यवस्था की नन्ही–सी बूँद है जिसके बिना कार्यालयी व्यवस्था पंगु नहीं ठप्प हो जाती है। यह सब छोटी मछलियों के दाने हैं जिन्हें खाकर वे बड़े भ्रष्टाचार पर उठने वाली अपनी अंगुलियों को अपनी भरी जेब में रखती हैं। चेयरमैन जैसे इनसे अधिक प्रसन्न भी नहीं होते। यह तो उनके सम्मान का आवश्यक हिस्सा हैं। इसके बिना चेयरमैन और चपरासी में क्या अंतर रह जाता है! असली मलाई तो लोन बाँटने और बैंक की ब्रांच खोलने में मिलती है। जो इस मलाई को बाँटने में चेयरमैनीय व्यवस्था के साथ सहयोग करता है, वह भी मलाई खाता है और जो नहीं करता है, वह विकास की तरह दर–दर भटकता है और पाँवों के लिए छाले पाता है। ऐसे चेयरमैन फँसते हैं पर बेदाग निकलते हैं। उसके बेदाग निकलने पर लेखक की कलम अपना आक्रोश उगलती है– ''सबको लगता था कि इस चेयरमैन के खिलाफ जरूर कार्रवाई होगी। लेकिन जब दूसरे बड़े बैंक के चेयरमैन के रूप में उसकी नियुक्ति हो गयी, तो लोगों की आस्था प्रशासन और न्याय से डगमगा

गयी। भ्रष्टाचार के रिश्ते नैतिकता से ज्यादा बड़े लगने लगे। पता नहीं इतना भ्रष्ट जीवन जीकर ऐसे लोग किनको सुख–सुविधा देते हैं। वाल्मीकि के जीवन से किसी ने सीख नहीं ली। विरासत, परम्परा आदि सब भाषणों की बात रह गयीं। वे सारी शब्दावलियाँ, मुहावरे, आदर्श ऐसे लोग सार्वजनिक जीवन में इस्तेमाल करने लगे कि इन शब्दों की सार्थकता खतरे में पड़ गयी। उसके अर्थ बदलने लगे। विवश लोग यह सब आँखों के सामने घटते देखने के लिए मजबूर से हो गये। जो थोड़ा–बहुत कुछ करने की क्षमता रखते हैं, उनके सोने चाँदी की थाली में कुछ सुविधाएँ परोस दी जाती हैं और वे अपने लाभ की बारी की राह तकने में ही सारा समय गुजार देते हैं।''

पर दामोदर खड़से को सब अंधकारमय नहीं लगता है। उनका मानना है कि यदि विकास जैसे हैं तो भास्कर राव जैसे चेयरमैन भी हैं जो पुराने की तुलना में एकदम अलग हैं। जो ऑफिशियल टूर में परिवार के साथ नहीं जाता है, किसी भी तरह का उपहार नहीं लेता है। जो निराश होता है हताश नहीं होता और जिसे देखकर विकास को लगता है कि रोशनी अभी भी बची हुई है। जिस चेयरमैन की बात को सुनकर लगता है कि जैसे वह अपने पिता के विचारों को सुन रहा है। जिसके कारण विकास को लगता है कि अब संघर्ष के दिन गए और अब उसे कुछ दिन बिना दबाव के काम करने का माहौल मिलेगा। विकास बैंक का जनरल मैनेजर हो गया है पर चेयरमैन बदला है व्यवस्था नहीं। विकास अचानक फिर काले बादलों में घिर जाता है। इस बार उसे अपने अनकिए की आँच झेलनी पड़ती है। अपने मताहत डिप्टी जनरल मैनेजर पर अति विश्वास का कुफल चखना पड़ता है। भ्रष्टाचार के इस रूप के संबंध में सुनिधि का मानना यही है कि– ये सब कुछ ऊपर से ही आता है। नेताओं और बड़े अफसरों ने अपने आपको निरंकुश समझ रखा है। इसीलिए लाखों–करोड़ों के घोटाले हो रहे हैं। न जाने कितने गेट खुल जाएँगे... पर इन नेताओं के पेट नहीं भरते। लालसा नहीं मिटती। पुलिस कस्टडी में भी टी.वी. कैमरा दिखते ही मुस्काते हैं, अँगुलियों से विक्ट्री का संकेत देते हैं। इन्हीं को देख–देख छुटभैये भी हाथ साफ करना चाहते हैं। लालच बुरी बला है, विकास जी...।' सुनिधि कुछ हल्का करना चाह रही थी विकास को। पर वह अपना मत भी देने से न चूकती, 'जब कमज़ोर सरकारें होंगी तो सारे लकड़बग्घे अपने–अपने जबड़ों में जितना भी आ जाए, उठाकर भागने लगते ही हैं। बस अब परिवर्तन होना चाहिए...।' तो विकास का मानना है– 'खाक परिवर्तन होगा... सब पार्टियों में एक जैसे लोग हैं। बोर्ड अलग–अलग रंगों से पुते हैं, दुकान में माल एक जैसा है....।' विकास के मन में बहुत रंज था।'

दामोदर खड़से का उपन्यास 'बादल राग' एक नई सोच का उपन्यास है। दामोदर खड़से का लेखन सामाजिक सरोकारों से जुड़े साहित्य का प्रतिबिंब है। इस उपन्यास का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। दामोदर खड़से का विविधमुखी साहित्यिक व्यक्तित्व है जो एक सशक्त कथाकार, संवेदनशील कवि, भाषाविद्, कुशल संपादक आदि से गुंफित है। ऐसी रचना ही तो शस्य अपार का कारण बनती है। ऐसी रचनाओं को ही तो चाहे बड़ी–बड़ी अट्टालिकाओं पर बैठे आलोचक अपनी लुच्चाई में पीठ दें पर पाठक इन्हें बुलाते हैं एवं पाठकों की यही शक्ति आलोचकों पर विप्लव बनती है।

❑❑

मैं कवि हूँ, क्या यह व्यंग्य नहीं... !

डॉ. दामोदर खड़से

घनश्याम अग्रवाल एक बार जालना में कवि सम्मेलन के मंच पर थे और उनकी कविता में कुछ पंक्तियाँ उभरी, "न मैं इंडिकेट हूँ, न में सिंडिकेट हूँ, मैं तो चमड़े का एक पेट हूँ।" कविता की इन पंक्तियों ने तत्कालीन इंडिकेट और सिंडिकेट को खूब मथा। एक विशाल मैदान पर यह कवि सम्मेलन हो रहा था और एक पहलवाननुमा नेता बौखलाया हुआ मंच की ओर बढ़ा और आँखें तरेरते हुए इस कवि को बैठाने के लिए जिरह करने लगा। मंच पर माणिक वर्मा जैसे ख्यातनाम कवि विराजमान थे, उन्होंने घोषित किया कि यदि इस कवि और कविता को रोका गया तो कवि सम्मेलन यहीं समाप्त हो जाएगा। अंततः उस नेता को समझा–बुझाकर दृश्य पटल से बाहर ले जाया गया और घनश्याम ने कविता–पाठ की अपनी पारी संयम के साथ पूरी की। घटना का तिलमात्र उल्लेख भी उन्होंने अपने बयान में नहीं किया। केवल कविता पढ़ी।

आज के कवि–सम्मेलन के मंच पर चुटकुलेबाजी और बयानबाजी तथा येनकेन प्रकारेण श्रोताओं को हँसाने के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगाने वाले कवियों के बीच घनश्याम अग्रवाल अपनी स्तरीय हास्य–व्यंग्य की रचनाओं को लेकर पिछले 55 वर्षों से मंचों पर हैं। पत्र–पत्रिकाओं में उनकी छोटी–छोटी क्षणिकाएँ हमारे परिवेश को रेखांकित कर देती हैं। 'मैं व्यंग्य कवि हूँ, मैं कवि हूँ, क्या यह व्यंग्य नहीं है ?' जैसी कविता पाठकों को अपने समय के साथ रूबरू करवाती है।

1977 में जब देश में आपातकाल घोषित हुआ था, उस समय कमलेश्वर 'सारिका' के संपादक थे। प्रेस की आजादी पर सेंसरशिप लादी गई थी। 'सारिका' का लघुकथा विशेषांक प्रेस में था। घनश्याम अग्रवाल की एक लघुकथा "आजादी के दुम" इस अंक में जानी थी। सेंसरशिप के चलते इस छोटी–सी लघुकथा पर जगह–जगह काली स्याही पोती गई। लेकिन इस लघुकथा ने सेंसरशिप की जकड़न को तोड़ दिया और यह अत्यंत लोकप्रिय हुई, जो आजादी के बाद देश के नेताओं का चरित्र और लालफीताशाही के कारनामों को उजागर करती है। कालांतर में कन्हैयालाल नंदन जब "सारिका" के संपादक थे तब उन्होंने हमारे देश के वर्तमान हालात पर एक जोरदार टिप्पणी लिखी थी और इस टिप्पणी के केन्द्र में घनश्याम अग्रवाल की "आजादी की दुम" थी।

घनश्याम के रचना संसार में देश का वर्तमान और आम आदमी का परिवेश बखूबी उभरकर आया है जिस बात के लिए कुछ लेखक कागज के भरपूर पन्नों में अपनी बात कहना चाहते हैं वह बात घनश्याम अपनी छोटी–सी क्षणिका में बखूबी कह जाते हैं। "डॉक्टर" शीर्षक कविता में वे कहते हैं "जाँच–जाँच में ही रोगी का रक्त पी लिया/पीला चेहरा देख बोले, तुम्हें हो गया पीलिया" इस प्रकार उन्होंने अत्यंत थोड़े शब्दों में समूचा बयान बखूबी निभाया है। समाजवाद की 'इन्क्वायरी' पर टिप्पणी करते हुए वे कहते हैं "पीठ के नजदीक जाकर/पूछ रहा है पेट/समाजवाद/और कितना लेट" या

अपनी "रिहर्सल" कविता में कहते हैं "चलो/पहले जनता का/मांस नोचें/फिर लीडर बनने की सोचें" वर्तमान समय का कवि यदि बेकारी पर न लिखे तो शायद वह अपने समय से आँखें चुरा रहा होता है। घनश्याम ने अपने समय को भरपूर अभिव्यक्त किया है। "बेकारी" कविता में वह कहते हैं "चाँद के आसपास/जब देखता हूँ/सितारों की भीड़/तो लगता है/एक खाली पोस्ट के लिए/आ गई हजारों एप्लिकेशन्स/" इस प्रकार प्रकृति के इस रोमानी दृश्य में भी घनश्याम अग्रवाल का व्यंग्यकार इसे अपनी ही कोण से देखता है।

घनश्याम अग्रवाल ने लंबे समय तक वाणिज्य–शास्त्र के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। सेवानिवृत्त हुए और पूर्णकालिक लेखक के रूप में एक व्यंग्यकार हिन्दी को मिला। उनका व्यक्तित्व बहुत अंतर्मुखी और संकोची है। बहुत मुश्किल से वे अपने दायरे में किसी को प्रवेश देते हैं। परंतु जब कोई उनके दायरे में प्रवेश कर जाता है तो कोई भी बाहर निकलने की इच्छा ही नहीं कर सकता। इसी स्थिति के कारण कई लोग उन्हें निरपेक्ष करार देकर फेंस पर फेंक देते हैं और दुनियादारी के इस व्यवहार पर घनश्याम की एक नई व्यंग्य रचना जन्म लेती है।

मित्रों के बीच ठहाका लगाना उनका प्रिय शौक है। किसी का भी व्यक्तित्व–चित्रण उनका पसंदीदा काम है। हास्य और व्यंग्य की चासनी में किसी व्यक्ति के गुण–दोष कुछ इस कदर हल्के–फुल्के शब्दों में व्यक्त करते हैं कि जिसके दोष बताये जा रहे हैं वह व्यक्ति भी अपने आप पर हँसने से स्वयं को रोक नहीं पाता। घनश्याम के हास्य–व्यंग्य की दूसरी खूबी यह है कि वह कभी भी किसी को भी लहूलुहान नहीं करता बल्कि हँसी–हँसी में तन–मन पर जमी अनावश्यक धूल झाड़ पोंछ कर व्यक्ति को स्वस्थ बनने का एक मौका देता है। समारोह में वे कम बोलते हैं, परंतु उनकी कविताएँ श्रोताओं के सिर पर चढ़कर बोलती हैं।

महाराष्ट्र के एक छोटे से शहर अकोला में रहकर इस कवि ने अपनी राजस्थानी भाषा पर भरपूर सान चढ़ाई है और इतने छोटे शहर में रहकर भी उन्होंने भारत के कोने–कोने में अपनी कविताओं की गूँज उठायी है। जीवन के तमाम संघर्षों, विपरीत स्थितियों, खट्टे–मीठे प्रसंगों और कडुवाहट भरे वातावरण को पीकर इस कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे परिवेश को शब्द दिए, समझ दी। जीवन को सहज, स्वाभाविक और सरल ढंग से जीने की एक नज़र दी। 80 की उम्र पार कर जाने के बाद भी बच्चों–सा अल्हड़पन, किशोरों–सा उत्साह और युवावस्था का संयमित आवेग उनके व्यक्तित्व से देखा जा सकता है। रही बात गंभीरता की तो उन्होंने अपना संपूर्ण लेखन प्रारंभ से लेकर अब तक बहुत गंभीरता से किया है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, माणिक वर्मा, काका हाथरसी जैसे हास्य–व्यंग्य के विराट व्यक्तित्व घनश्याम अग्रवाल को कदम–कदम दुलारते रहे। परंतु लेखन पर उन्होंने किसी की छाप नहीं पड़ने दी। इसलिए घनश्याम अग्रवाल आज भी अपनी मौलिक शैली के लिए जाने जाते हैं।

घनश्याम अग्रवाल की व्यंग्य रचनाएँ बहुत मारक होती हैं। चुटीली भाषा में अपने आसपास की विसंगतियों को वे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि पाठक अपने समय के सच को अपने सामने पाता है। बड़ी सहज–सरल भाषा में उनके व्यंग्य सीधे प्रहार करते हैं। खासकर व्यवस्था की विसंगतियाँ इनकी रचनाओं में विशेष गवाही देती हैं– 'एक नदी गाँव और शहर में क्रॉस कर बहती है... शहर की नदी पर बना सीमेंट का पक्का पुल... गाँव की नदी पर बांस का कच्चा पुल... बाढ़ आई, देखते–देखते शहर का पक्का पुल बह गया, गाँव का कच्चा पुल वैसा ही रह गया... जाँच की तो पता चला गाँव के पुल का अब तक उद्घाटन नहीं हुआ है...!' इस तरह स्थितियों की महीन पर्तों को व्यंग्यात्मक रूप से उघाड़ कर सच्चाई, भ्रष्टाचार आदि का वे उद्घाटन करते हैं। नये संग्रह 'मिक्स वेजिटेबल' में चारों तरफ फैली

विसंगतियों का जीवंत लेखा–जोखा है। मोटे हास्य के रूप में प्रारंभ होती बात अचानक गंभीर व्यंग्य तक पहुँच जाती है।

'एक और ग्रहण : शपथ ग्रहण' शीर्षक ही सारी बात बयान कर जाता है। शैली इतनी चुटीली होती है कि पाठक आकर्षित होता ही है। इस शीर्षक को विस्तार देते हुए वे लिखते हैं– 'कुदरत के नियम अटल होते हैं, इसलिए आप अभी से पता लगा सकते हैं कि भविष्य में कब व कितनी देर का चंद्र–ग्रहण होगा या सूर्य–ग्रहण होगा। वह कहाँ–कहाँ, कितना–कितना और कैसे–कैसे दिखेगा। पर चूंकि दिल्ली के नियम अटल नहीं, टल होते हैं, इसलिए बड़े–बड़े वैज्ञानिक भी पता नहीं लगा सकते कि शपथ–ग्रहण कब, कैसा और कहाँ होगा ? साधारणतः शपथ–ग्रहण पाँच साल बाद होना चाहिए... पर खींच–तान में कुर्सी स्वयं गिर जाती है... फिर शपथ–ग्रहण होता है। ...ग्रहण और शपथ–ग्रहण में बहुत–सी बातें समान होती हैं– जैसे दोनों ही देश के लिए घातक और अशुभ होते हैं... !' इस व्यंग्य लेख में लेखक ने राजनीति, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, दांव–पेंच और कुर्सी के खेल का खूब बयान किया है। 'जूते' लेख में, जूते के माध्यम से व्यक्ति की हैसियत का मोल करनेवालों पर व्यंग्य है। 'फिर लक्ष्मी भूल गई मेरे घर का रास्ता' में लक्ष्मी और सरस्वती के मिथकों के माध्यम से समाज के विभिन्न लोगों के स्वभावों को दर्शाया गया है। 'भगवान बचाए इन हमदर्दों से' बहुत छोटी–सी घटना को आधार बनाकर मनुष्य के मनोविज्ञान का विश्लेषण इसमें है। दुर्घटना का शिकार होने पर अस्पताल में हमदर्दी जताने वाले मित्र, रिश्तेदारों को सूक्ष्मता से परखते हुए लेखक ने औपचारिकता पर करारा व्यंग्य किया है। किसी पर दुःख–तकलीफ की मार पड़ने पर कम ही लोग होते हैं, जो सचमुच सहानुभूति और सहायता के लिए मिलने आते हैं, अधिकांश लोग औपचारिकतावश ही आते हैं। बहुत सूक्ष्म निरीक्षण से लेख सार्थक बन पड़ा है।

'हमारा राष्ट्रीय संबोधन' लेख में घनश्याम अग्रवाल ने राजनीतिक लोगों द्वारा उपयोग किया जा रहा 'भाइयों और बहनों' के सम्बोधन को अलग–अलग रूपों में और उसके परिणामों को रेखांकित किया है। विवेकानंद का शिकागो में भाइयों और बहनों कहना सबके लिए आत्मीयता का प्रतीक बनता, लेकिन, राजनीतिज्ञों द्वारा किया गया यह सम्बोधन लेखक को राजनीति की धूर्तता व्यक्त करने का नारा लगता है। वे कहते हैं– 'आजादी के बाद हमारे नेताओं ने इस पवित्र सम्बोधन की ऐसी गत कर दी है कि भाइयों और बहनों कहकर वोट तो माँग लेते हैं, पर सत्ता मिलते ही अपने भाई–बहन को छोड़ बाकी की ऐसी–तैसी करने में लग जाते हैं... अब नेताओं के मुँह से भाइयों और बहनों सुनना, माँ–बहन की गाली सुनने जैसा लगता है।'

घनश्याम अग्रवाल ने अपने संग्रह का नाम 'मिक्स वेजिटेबल' रखा है। लेकिन इसे केवल व्यंग्य में पकाया गया है, कहीं–कहीं हास्य का तड़का दिया गया है। व्यंग्य लेखों के अलावा लघुकथाएँ, व्यंग्य–कविताएँ और कुछ संस्मरण इसमें दिए गए हैं। लघुकथाओं में 'दि बुलेट ट्रेन', 'क्लीन बोल्ड' समसामयिक होते हुए भी स्थायी महत्व की बातें हैं। 'अपने–अपने रामराज्य' बड़ी रोचक लघुकथा बन पड़ी है। बकरी और शेर रामराज्य में एक ही घाट पर पानी पीने की कल्पना की गई है। इसमें राम का रामराज, काँग्रेस का रामराज, भाजपा का रामराज और अन्य पार्टियों के रामराज में बकरी और शेर की क्या स्थिति होगी, इसका रोचक ब्यौरा दिया गया है। निष्कर्ष लेखक यह देते है कि 'सत्ता इसकी हो या उसकी साल नया हो या पुराना बकरी (जनता) को मरना ही है हर हाल में सिर्फ शेर ही 'चीयर्स' करते हैं नये साल में।' 'सॉरी', 'रोशनी ढोते हुए' रोचक लघुकथाएँ हैं। 'टेंपररी इंटरव्यू! मोमबत्तीवालों से' यह मध्यवर्ग की ऐसी कथा है, जो अत्याचारों पर विशेषतः महिलाओं पर होते अत्याचारों के बाद मोमबत्ती का जुलूस निकालते हैं। एक दिन यह करते

हैं और भूल–से जाते हैं। लेखक ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में एक इंटरव्यू का आयोजन किया है। ... ऐसा कब तक चलेगा... का उत्तर मिलता है, 'हमेशा जब तक पीड़िता की चिता की राख ठंडी होने के पहले बलात्कारियों को सरे आम फाँसी नहीं दी जाती तब तक... जब तक बलात्कारियों के साथ–साथ उन्हें भी फाँसी न दी जाए, जो ऐसी घटनाओं पर राजनीति करते हैं, साम्प्रदायिकता फैलाते हैं, तब तक। जब तक सिर्फ पीड़िता के घर का ही नहीं, उस दिन किसी भी घर का चूल्हा नहीं जलेगा, तब तक।' 'अपने–अपने सपने' भूख और रोटी की कहानी कहती है। जिसे भूख ने पराजित कर दिया है, उसे रोटी के अलावा दूसरे सपने कहाँ से आएँगे। लघुकथा, घनश्याम अग्रवाल की अपनी मौलिक शैली में उभरी है। समाज–परिवेश की विसंगतियों को व्यंग्य में पिरो कर बहुत रोचक लघुकथाएँ इस संग्रह में प्रस्तुत की गई हैं।

इस संग्रह में घनश्याम अग्रवाल की कुछ कविताएँ भी हैं। कई कविताएँ पहले तो हास्य की लगती हैं, पर उनके पीछे गहरा व्यंग्य छिपा होता है। 'व्यंग्यासन' शीर्षक से कुछ कविताएँ हैं जो योगासन से सम्बन्धित हैं। एक बच्चे को योग सिखाया जाता है, वह अपेक्षित आसन आसानी से कर लेता है, उससे पूछने पर वह कहता है– 'न तो मैंने गहरी साँस ली। न ही पेट को खींचा हूँ। मैं तो तीन दिनों से भूखा हूँ। पेट अपने आप अंदर चला गया है।' 'कपालभाति' में एक अलग ही स्थिति उभरती है– 'योग दिवस पर/ सामूहिक रूप से कपालभाति हो रही है/दुनिया वाले कुछ/ऐसा ही भाँप रहे थे/...हकीकत ये थी/योग भवन हेतु/पसीने से लथपथ बोझा उठाए/फूली हुई साँसों से मजदूर हाँफ रहे थे।' ऐसे ही 'शवासन', 'शीर्षासन' और 'अनुलोम–विलोम' के चित्र उभरते हैं। 'पर्यावरण के तले' शीर्षक से तीन कविताएँ हैं, जो प्रदूषण के लिए जिम्मेदार तत्वों को रेखांकित करती हैं। 'बिन पानी सब सून', छोटी–छोटी व्यंग्यात्मक कविताओं में बड़ी–बड़ी बातें कही गई हैं। 'दिल से दिल्ली तक' कई छोटी–छोटी कविताओं का समूह है। बहुत तीखे व्यंग्य से भरी हैं ये कविताएँ– 'हमने अँधेरे में कई/घर जलाए/मगर/रोशनी/कहाँ ढूँढ़ पाये ?' 'भ्रष्टाचार के सात सत्य' शीर्षक से लिखी कविताएँ समाज को झकझोर देती हैं। कवि के रूप में घनश्याम अग्रवाल छोटी कविताओं में एक आईना दिखाते हैं, जिसमें अपना चेहरा देख लोग सिहर उठते हैं। एक क्षणिका में वे कहते हैं, 'दुनिया में जब/एक आदमी भी/भूखा सोता है/ तो भर–पेट खाने वाले/हम–तुम–सब/एक रात के लिए आतंकवादी होते हैं।' घनश्याम के व्यंग्य में केवल स्थितियों का विश्लेषण नहीं होता, बल्कि जीवित समाज इसमें से बेहतरी के लिए समाधान भी पा सकता है। अपनी एक कविता में 'सजा' और 'न्याय' सुनाते हुए वे लिखते हैं–

ये नेता है
इसने दंगे बोये
इसे दस कोड़ों की सजा दी जाती है!
ये धर्मगुरु है
इसने दंगे फैलाएँ
इसे बीस कोड़ों की सजा दी जाती है,
ये लेखक है
इसके होते हुए दंगों का माहौल बना,
इसे सौ कोड़ों की सजा दी जाती है!...

घनश्याम अग्रवाल हिन्दी साहित्य का एक चर्चित नाम है। अपनी कविताओं और व्यंग्य रचनाओं से हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले घनश्याम अग्रवाल को पिछले दिनों राजस्थानी विकास मंच संस्थान द्वारा डी. आर. लिट. उपाधि से सम्मानित किया गया। इससे पूर्व 1996 में राष्ट्रपति भवन में आयोजित एक विशेष समारोह में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 'काका हाथरसी हास्य व्यंग्य पुरस्कार' से उन्हें अलंकृत किया। इन दिनों वे टी.वी. सीरियलों के लेखन में व्यस्त हैं और कवि सम्मेलन के मंचों पर सक्रिय हैं।

❑❑

संवाद

डॉ. दामोदर खड़से से डॉ. संजीव कुमार का संवाद

प्रश्न : साहित्य–सृजन में आपकी रुचि कैसे उत्पन्न हुई? किस साहित्यकार से आपको लिखने की प्रेरणा मिली?

उत्तर : सातवीं कक्षा में मैं था। तब स्कूल में एक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। मुझे उसमें दूसरा क्रमांक मिला और पुरस्कार स्वरूप हमारे शिक्षक केशवचंद्र गुप्त ने 'प्रेम दर्शन' नामक पुस्तक दी। केशवचंद्र गुप्त जी का व्यक्तित्व और स्वभाव बहुत आत्मीय था। मेरे प्रति उनका विशेष स्नेह था। वे पढ़ाते समय इतने तल्लीन हो जाते कि विद्यार्थियों को भी अपने साथ समेट लेते। उस समय साहित्य जैसी कोई संकल्पना मालूम नहीं लगती थी, पर बातें आकर्षक लगतीं। उनकी दी पुस्तक पैंसठ वर्षों से मेरे पास सुरक्षित है। इस पुस्तक ने प्रभावित किया। ऊपर की कक्षा में श्रीवास्तव जी नामक शिक्षक कबीर को इतने प्रभावशाली ढंग से पढ़ाते कि कबीर के प्रति एक रिश्ता जुड़ गया। कॉलेज पहुँचते ही और साहित्य के प्रति कुछ उत्कंठा जगते ही प्राध्यापक रामकृष्ण श्रीवास्तव का सान्निध्य मिला। मैं पहली बार महाराष्ट्र के अकोला शहर में आया था। मेरे उच्चारण में मध्यप्रदेश के ध्वनि की घूंटी थी। श्री श्रीवास्तव जबलपुर से थे। शायद यह धागा सान्निध्य बुन गया। वे बहुत अच्छे कवि थे। वे पढ़ाते समय तमाम कवियों के उदाहरण देते और मंचों पर काव्य–पाठ करते। हम उन्हें तन्मय होकर सुनते। वे मेरे आदर्श थे। उनकी पंक्तियाँ मेरी पीछा करतीं। उनकी पंक्तियों में गुनगुनाहट होती।

'बेड़ियाँ तम की पड़ी हैं पाँव में
हाथ जलते हैं मशालों की तरह।
कौंध उठते हैं अँधेरी रात में
गीत ओंठों पर उजालों की तरह!'
और
'जो कलम सरीखे टूट गए, पर झुके नहीं,
उनके आगे यह दुनिया शीश झुकाती है
जो कलम किसी कीमत पर बेची नहीं गई,
वह तो मशाल की तरह उठाई जाती है!'

श्री रामकृष्ण श्रीवास्तव जी का व्यक्तित्व और ऐसी पंक्तियाँ भीतर तक उतरकर प्रेरित करती रहीं। फिर वे प्राचार्य बने। पर मात्र इकतालीस वर्ष की आयु में कॉलेज का कामकाज करते हुए सुबह 8.00 बजे हृदयाघात से उनका देहावसान हो गया। यह घटना मेरे भीतर घनघोर तिलमिलाहट बो गई। बचपन से मंचों पर भाषण स्पर्धाओं में भाग लेने वाला– मैं, उस समय श्रद्धांजलि सभा में एक शब्द नहीं बोल पाया। भीतर का गुबार धीरे–धीरे कविताओं में उभरने लगा।

लेखन की पहली प्रेरणा रामकृष्ण श्रीवास्तव ही रहे। किशोर अवस्था में केशवचंद्र गुप्त ने बीज बोये, साहित्य को समझने से पहले उन्होंने साहित्य या लेखन के प्रति उत्सुकता जगायी। बाद में, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश जैसे लेखकों को पढ़ते हुए साहित्य के प्रति और लेखन के प्रति रुझान बढ़ने लगा।

प्रश्न : आपकी पहली रचना क्या थी और कब प्रकाशित हुई थी?

उत्तर : मेरी पहली रचना 1965 में लिखी गई। उस समय उम्र सत्रह वर्ष थी। दरअसल पिता के तबादले नौकरी के कारण होते रहते और अंबिकापुर (म.प्र. अब छत्तीसगढ़) से हो जाने के कारण आत्मीय मित्र कृष्णा से बिछुड़ने से भीतर की उद्‌भावनाओं को शब्दों में बांध सका। पर समय के प्रवाह में वह कहीं गुम हो गई। अब मेरे पास नहीं है और न ही वह प्रकाशित हो सकी। लेकिन, इस पहली कविता ने मुझे बहुत सिखाया। भीतरी ऊहापोह को शब्द देने की यह शुरुआत थी, इसलिए मैं उन क्षणों को कभी नहीं भुला पाया।

पहली रचना कॉलेज के वार्षिकी में छपी थी। उस समय इन सबको संजो नहीं पाया। पर जो मुझे याद है एक छोटी–सी रचना 1977 में 'नवभारत टाइम्स' में छपी थी। यह एक क्षणिका थी और इतने बड़े अखबार में प्रकाशित हुई। चूंकि वह अत्यंत छोटी है; याद भी है–

शीर्षक – 'असफलता',

'जब भी मैंने
डूबकी लगानी चाही
सारा मानसरोबर
चुल्लू हो गया !'

बाद में, स्थानीय अखबारों, पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। नागपुर आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण भी होता रहा। राष्ट्रीय स्तर की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन उत्साहित करता रहा। 'सारिका' में पाठकीय पन्ने से लिखना प्रारंभ होकर कई कहानियों तक आगे बढ़ता रहा। कमलेश्वर उस समय 'सारिका' के संपादक रहे। बाद में जब एक कहानी डॉ. धर्मवीर भारती के संपादन में धर्मयुग के दीपावली विशेषांक में 'पार्टनर' शीर्षक से आई तो कहानी लेखन ने गति पकड़ ली।

प्रश्न : साहित्य की किस–किस विधा में आपने काम किया है? और किस विधा में आपकी अधिक रुचि है ?

उत्तर : साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लिखने की कोशिश की है। केवल नाटक विधा में कुछ संभव नहीं हुआ। पर कुछ मराठी नाटकों के अनुवाद किए हैं, जिनमें विजय तेंडुलकर, जयवंत दलवी, अभिराम भड़कमकर जैसे नाटककारों के नाटकों का समावेश है। वैसे कविता विधा से लेखन का प्रारंभ होकर कहानी, उपन्यास, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं में लेखन होता रहा है। कुछ समीक्षात्मक लेख भी लिखे।

जहाँ तक रुचि का प्रश्न है, अब कहानी–उपन्यास में लेखन अधिक है। यदाकदा कविताएँ भी दस्तक देती हैं। लेकिन कथा विधा प्रमुख रूप से साथ में चल रही है।

प्रश्न : आपने कविता और कहानी में चुनाव कैसे किया ?

उत्तर : कविता सहज रूप से उभरती रही। प्रारंभ में कविता ने मुझे चुना। भीतरी ऊहापोह और परिवेश की ध्वनियाँ कविता में समाहित होती रहीं। इस तरह कहा जा सकता है कि शुरुआत कविता संकेंद्रित लेखन रहा। बाद में, आसपास की घटनाओं और मन को झकझोरती

सामाजिक अनुभूतियों ने कहानियों की ओर मोड़ दिया। कविताओं में अधिकांश अभिव्यक्तियाँ सांकेतिक और कुछ दो पंक्तियों के बीच होती। पर कहानी में विस्तार व्यापकता और विचारों को विकसित करने की संभावना जान पड़ी। इस तरह धीरे–धीरे कथा–साहित्य की ओर मन रमने लगा। सामाजिक–राजनैतिक विसंगतियाँ, व्यक्ति की स्वार्थ लोलुपता, कुछ पात्रों की उदारता, मानसिक संघर्ष जैसी स्थितियों का चित्रण कहानियों–उपन्यासों में विस्तार से होने लगा। व्यक्ति के चरित्र और जीवन का चित्रण कथा–उपन्यासों में सहज लगने लगा।

प्रश्न : आपका रचना–संसार बहुत व्यापक है? कृपया अपनी कृतियों का उल्लेख करें?

उत्तर : मेरे लेखन की शुरुआत तो कविता से हुई पर पहली कृति कथा संग्रह के रूप में हुई – 'भटकते कोलंबस' फिर कहानी–संग्रह प्रकाशित होते रहे– 'पार्टनर', 'आखिर वह एक नदी थी', 'जन्मांतर गाथा', 'इस जंगल में', 'गौरैया को तो गुस्सा नहीं आता', 'रेत की प्यास' आदि। कुछ चुनिंदा संग्रह भी इनमें से आए, जिनमें 'सम्पूर्ण कहानियाँ', 'यादगारी कहानियाँ, 'चुनिंदा कहानियाँ', 'चुनी हुई कहानियाँ', 'मेरी कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुई। चार उपन्यास– यथा– 'काला सूरज', 'भगदड़', 'बादल राग' और 'खिड़कियाँ' हैं। कविता संग्रह हैं– 'अब वहाँ घोंसले हैं', 'जीना चाहता है मेरा समय', 'सन्नाटे में रोशनी', 'तुम लिखो कविता', 'अतीत नहीं होती नदी', 'रात', 'नदी कभी नहीं सूखती', 'पेड़ को सब याद है', 'लौटती आवाजें', 'लौट आओ तुम' और 'अलाव में आँच बाकी है'। समीक्षा की एक पुस्तक है– 'सृजन के सरोकार'। कहानी, उपन्यासों और कविताओं के अनुवाद अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालय, डोंगरी, तेलुगु, उर्दू भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। 'बादल राग' उपन्यास आठ भाषाओं में अब उपलब्ध है।

'यात्रा और भेंट यात्राएँ' भी आईं। जिनमें 'जीवित सपनों का यात्री' 'एक सागर और', 'संवादों के बीच', 'आईने के सामने' उल्लेखनीय हैं। राजभाषा पर आठ पुस्तकें प्रकाशित हैं। साथ ही बीस पुस्तकों (मराठी से हिंदी) के अनुवाद प्रकाशित हुए और तीन अनुदित पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं।

'मैं लौट आया हूँ' और 'कुछ कहने की प्यास है' शीर्षक से कविताओं का कैसेट और सीडी का निर्माण हुआ है। साथ ही, सात ग्रंथों/विशेषांकों का संपादन किया है। मुझ पर केंद्रित आठ ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में मेरे साहित्य पर आठ शोध– कार्य सम्पन्न हो चुके हैं और तीन विश्वविद्यालयों में शोध–कार्य जारी हैं।

प्रश्न : आप अपनी रचनाओं में विषय–वस्तु कैसे चुनते हैं ?

उत्तर : कविता के लिए विषयवस्तु भीतरी ऊहापोह और परिवेश से मिलती है। जहाँ तक कहानी–उपन्यास की बात है, आसपास घट रही घटनाओं, सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्थाओं, लोगों के व्यवहारों और जीवन की विसंगतियों से विषय, पात्र और घटना–क्रम प्राप्त होते हैं। मूल रूप से समाज और व्यक्ति ही विषयवस्तु का निर्माण करते हैं।

प्रश्न : क्या आपके पात्र जीवन से जुड़े होते हैं या काल्पनिक होते हैं ? आपका सबसे

प्रिय पात्र कौन–सा है ?

उत्तर : मेरे पात्र जीवन के करीब होते हैं। समाज में विचरण कर रहे पात्र मेरी रचनाओं में आते हैं। इसीलिए वे पूर्णतः यथार्थ चित्रण के प्रतिनिधि होते हैं। उन्हें कोई भी काल्पनिक नहीं कह सकता। संक्षेप में कहें तो जीवन से जुड़े यथार्थ पात्र– जो जैसे हैं, वैसे हैं; और 'जैसे होने चाहिए' उनकी कल्पना का छौंक अनायास ही लग जाता है। पर कोरी कल्पना का मेरा एक भी पात्र नहीं है। हर पात्र अपनी जीवित जमीन पर खड़ा होता है। जब कोई कृति खड़ी होती है उसके लिए जीवित पात्रों की जमीन से मिट्टी ली जाती है और यह कहना सही होगा कि उस मूर्ति पर कल्पना का रंग–रोगन चढ़ाना होता है। तब एक सम्पूर्ण मूर्ति साकार होती है।

जहाँ तक प्रिय पात्र की बात है। कई कारणों और आधारों से अन्यान्य पात्र प्रिय होते हैं। लेखक जिसे पात्र के रूप में चुनता है, वह उसका प्रिय ही होता है। चूंकि एक पात्र के प्रिय होने की बात कही गई है– तो– 'बादल राग' की सुनिधि प्रिय पात्र है। वैसे सुनिधि, विकास के बिना अधूरी ही रहेगी।

प्रश्न : आपकी रचना–प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले मूलतत्व क्या हैं ?

उत्तर : आसपास, परिवेश में घटती घटनाएँ मन को झकझोरती हैं और मन खिन्न हो जाता है। व्यवस्था के कारिंदे शोषण की पहली सीढ़ी बन जाते हैं। कमजोर को रौंद कर वे आगे बढ़ने में अपने आपको धन्य समझते हैं। महानगरों में झोंपड़ी–झुग्गियों में रहने वाले मजदूर लोगों से हफ्ता–वसूली, अनधिकृत रूप से ठेलिए पर कुछ साग–सब्जी बेचने वालों को खदेड़ने के एवज में पैसे वसूली जैसी घटनाएँ विचलित करती हैं। फुटपाथों और रेल लाइन के आसपास गुजारा करने वालों पर बाहुबलियों का झपटना दुखद लगता है। इसके अलावा सामाजिक विसंगतियाँ, राजनीति के ठेकेदारों का एकाधिकार, सत्ता–व्यवस्था का कसता शिकंजा, शोषण, स्वार्थ लोलुपता, रिश्तों की टूटती कड़ियाँ जैसी कितनी ही घटनाएँ हैं, जो रचना प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। मेरी कई कहानियाँ और उपन्यास की बुनियाद ऐसी ही स्थितियों की गवाह हैं। 'मुहाने पर' कहानी मुंबई महानगर के फुटपाथ पर कार्पोरेशन के अधिकारियों के अतिवादिता की प्रतिध्वनि ही है। बावजूद इसके अपने संघर्षों, मेहनत, सूझ–बूझ जैसे तत्वों से लबरेज कुछ लोग अपने लक्ष्य को हासिल करते हैं, वे मेरे लेखन में दस्तक देते हैं। ऐसी सारी बातें जो मनुष्य के विरूद्ध खड़ी होती हैं, वे ही कुछ लिखने–कहने के लिए विवश करती हैं। ऐसे दृश्य भीतर उतर जाते हैं, जो बाद में कथा–बीज के रूप में, लेखन–यात्रा में पात्रों का निर्माण करते हैं। ये सब जीवन से, उद्‌भूत होते हैं और जीवन में ही समाहित हो जाते हैं।

प्रश्न : सामाजिक परिवेश और उसमें होने वाले परिवर्तनों से आपकी रचनाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर : सामाजिक परिवेश और उसमें होने वाले परिवर्तनों का गहरा प्रभाव रचनाओं पर पड़ता है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, बेरोजगारी जैसी बातें परिवार और व्यक्ति

को प्रभावित करती हैं। सामाजिक रूप में कई विसंगतियों की जड़ें राजनीतिक स्थितियों के कारण उत्पन्न होती हैं। प्रतिभा पलायन, शहरीकरण, नौकरीपेशा, रोजगार की तलाश जैसे तत्व भी समाज को प्रभावित करते हैं। वृद्ध ों का अकेलापन परिवारों के विखंडन के कारण पनपता जा रहा है। मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' इसी स्थिति की छाया है। युवा–वर्ग अपनी जमीन बनाने के लिए महानगरों की ओर भाग रहे हैं और उनके पीछे पिछड़ती जा रही पिछली पीढ़ी जीवन की अजीब–सी स्थिति में उलझ जाती है। मेरा उपन्यास 'भगदड़' इन्हीं स्थितियों को उजागर करने की कोशिश करता है। समाज की धड़कन की प्रतिध्वनियाँ साहित्य में उभरनी स्वाभाविक ही हैं। साहित्य ही समाज की वास्तविक तस्वीर और सार्थक इतिहास रचता है।

प्रश्न : आप अपनी कौन–सी रचना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं ? और क्यों ?

उत्तर : वैसे तो अपनी ही कई रचनाओं में से किसी एक को सर्वश्रेष्ठ मानना आसान नहीं है। क्योंकि हर कृति अपने आप में अतुलनीय ही होती है। फिर भी 'बादल राग' मुझे अधिक संतोष देनेवाला उपन्यास है, जिसका लगभग आठ भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। यह मुझे इसलिए भी विशेष लगता है, क्योंकि स्त्री–संघर्ष के विविध पहलू इसमें मैं समेट सका। पारिवारिक चुनौतियाँ, निजी प्रगति का संघर्ष, अकेली स्त्री का, अपनी सुरक्षा के साथ, नई–नई सीढ़ियाँ हासिल कर अपने संस्थान के प्रधान के रूप में स्वयं को सिद्ध करना; जैसी बातें इस उपन्यास में समाहित हो सकीं। साथ ही, स्त्री–पुरुष की निरपेक्ष और प्रथा–परंपरा से हटकर सम्मानजनक रिश्तों की पैरवी इस 'बादल राग' उपन्यास में हो सकी। स्त्री केवल दैहिक आलम्बन न होकर बौद्धिक, व्यावसायिक, कार्पोरेट जगत् में बराबरी के साथ कदम बढ़ाने में सक्षम है, यह बात भी उभरकर आ सकी। साथ ही, स्त्री–पुरुष का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक रूप से उभरा और उसकी सम्मानजनक परिणति हुई।

प्रश्न : आजकल लेखकों द्वारा काफी कुछ लिखा जा रहा है, किंतु पाठक उतना प्रभावित नहीं हो पा रहा है। आपकी दृष्टि में इसका क्या कारण है ?

उत्तर : लेखक को पाठक का मन, स्थिति और परिवेश में प्रवेश कर लेखन में उसे उतारना होगा। आज पाठक के पास कई विकल्प हैं। टीवी उनमें से मुख्य है, जिसमें नेटफ्लिक्स, यूट्यूब, इन्स्टाग्राम जैसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। लेकिन पाठक को साहित्य की ओर मोड़ने के लिए अपने लेखन की शैली और विषय में भी नयापन लाना होगा। लेखक को अपना पाठक भी बनना होगा और देखना होगा कि उसका पाठक उसके अपने लेखक से कितना संतुष्ट है। पाठकों को परोसे जा रहे आधुनिक माध्यमों से आसानी से ध्यान हटाना मुश्किल लगता है। लेकिन,

यदि लेखक अपनी आत्ममुग्धता से बाहर निकलकर परिवेशगत यथार्थ को पाठक की दृष्टि से अभिव्यक्त करता है तो ऐसी कृति पाठक की अपनी परछाई दिखेगी... फिर पाठक पुस्तकों की ओर लौट सकेगा।

प्रश्न : डिजिटल युग में आपको साहित्य का क्या भविष्य प्रतीत होता है ?

उत्तर : वैज्ञानिक क्रांतियाँ निरंतर होती रहेंगी। हम अब डिजिटल युग में प्रवेश कर चुके हैं। सारी दुनिया एक–दूसरे के करीब आ गई है। नेट पर आज सब कुछ उपलब्ध है। जानकारियों का अक्षय भंडार है। अब साहित्य को दुनिया के किसी भी छोर पर बैठकर पढ़ा जा सकता है। साथ ही कागज साहित्य को समेटे हुए भी है और तमाम स्क्रिन साहित्य को दूरदराज में उपलब्ध करा रहे हैं। एक समय था कि विदेश में बैठे पाठक अपना साहित्य पढ़ने को तरसते थे। अब कई पत्रिकाएँ–पुस्तकें दुनिया के किसी भी कोने में पढ़ सकते हैं। लाभ उठाने वालों के लिए डिजिटल युग साहित्य के प्रचार–प्रसार के लिए वरदान है। इसलिए डिजिटल युग में भी साहित्य का भविष्य उज्ज्वल ही है।

प्रश्न : प्रवासी हिंदी साहित्य की समृद्धि के लिए आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : सुख–समृद्धि और बेहतर जीवन हासिल करने के लिए व्यक्ति दूर देश में निकल जाता है। कुछ रोजगार के चलते देश–संस्कृति से छिटक जाते हैं। बाहर जाने के बाद उन्हें अपनी जड़ों से जुड़ने की सहज इच्छा रहती है। वह अपने अनुभव अपनी भाषा में अभिव्यक्ति कर राहत की अनुभूति अनुभव करते हैं। प्रवासी साहित्य हमारे अपने पाठकों को उस विदेश के जीवन की भीतरी तस्वीर उजागर करता है। संस्कृति की टकराहट, पहचान का संघर्ष, अस्मिता के प्रश्न और जो पाया उसकी कीमत का लेखा–जोखा इसमें उभरकर आता है। वर्तमान में हिंदी में बड़ी मात्रा में प्रवासी साहित्य आ रहा है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत ने इस संदर्भ में बहुत योगदान दिया है। अब रामदेव धुरंधर जैसे लेखक अभिमन्यु अनत की विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं। इंग्लैंड में तेजेन्द्र शर्मा, उषाराजे सक्सेना, दिव्या माथुर जैसे कई लेखक अपने प्रवास के जीवन को शब्दबद्ध कर रहे हैं। अमेरिका में भी प्रवासी साहित्य का सृजन बड़ी मात्रा में हो रहा है। डॉ. सुषम बेदी जैसे रचनाकार के योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है... ये तो प्रतिनिधि के रूप में हैं, आज बड़ी मात्रा में प्रवासी हिंदी साहित्य का सृजन हो रहा है। भारत में पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तक के रूप में इस साहित्य का प्रकाशन भी हो रहा है। निस्संदेह प्रवासी हिंदी साहित्य समृद्ध हो रहा है।

प्रश्न : लेखन–कार्य के अलावा आपकी अन्य अभिरुचियाँ क्या हैं ?

उत्तर : मुझे यात्रा करना बहुत अच्छा लगता है। देश–विदेश में यात्रा करना, वहाँ की

संस्कृति, खान–पान और रहन–सहन को देखना–जानना सुखद लगता है। पुरानी फिल्मों के गीत बहुत सुहाते हैं। अन्यान्य कारणों से विभिन्न शहरों, स्थानों पर निवास होता रहा। उन पुराने स्थानों में फिर–फिर जाने की ललक मन में रहती है। मित्रों के साथ लम्बी बातें करना अच्छा लगता है। अब पहले की तरह निरंतर मिलने की स्थिति नहीं बन पाती, पर फोन पर घंटों बातें करने के बाद भी, समय का पता ही नहीं चलता। साथ ही, पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों में मन रमता है।

प्रश्न : उदीयमान लेखकों के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?

उत्तर : हर नई पीढ़ी अपने समकालीन परिवेश को अपनी शैली में शब्दबद्ध करती है। समय के साथ समाज की स्थितियाँ और मान्यताएँ बदलती रहती हैं। इन सारी स्थितियों को नये लेखक अपने लेखन में उतारें। अपने वर्तमान को रेखांकित करते समय अतीत के लेखन का अध्ययन उन्हें सामाजिकता को जानने–समझने में मदद करेगा। इसलिए अपने लेखन के साथ उपलब्ध साहित्य को पढ़ने से वे अपने विचारों को अधिक पठनीयता सौंप सकते हैं।

प्रश्न : हिंदी साहित्य के पाठकों की संख्या के विकास के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?

उत्तर : बच्चों को स्कूली जीवन से पठनीयता का पाठ पढ़ाना चाहिए। किशोर और युवा वय में पढ़ने की अभिरुचि विकसित करने के प्रयास लाभदायी सिद्ध हो सकते हैं। इसके लिए अच्छी पुस्तकें और पत्रिकाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। बड़े होने पर उनकी अभिरुचि बनी रहेगी। आज नेट से सीधे पुस्तकें मंगवायी जा सकती हैं। साथ ही, ई–बुक्स में भी पाठकों के लिए उपलब्ध है। एक बात और लगती है कि पुस्तकों के मूल्यों का अधिक होना भी पाठकों तक पहुँचने में बाधक लगता है। पुस्तकों की कीमतें निजी खरीद के लिए यदि कम हो सकती हैं तो पुस्तकें पाठकों तक पहुँचने में सहजता–अनुभव कर सकेंगी। उपलब्धता भी पाठक को आकर्षित कर सकेगी। महाराष्ट्र के भिलार नामक गाँव को पुस्तकों का गाँव घोषित किया गया है। जहाँ गाँव के लोगों के पचीस घरों में विविध विधाओं की पुस्तकें रखी गई हैं। हर वर्ष इसमें नई पुस्तकें जोड़ी जाती हैं। पत्र–पत्रिकाएँ भी अलग घर में नियमित रूप से आती हैं। यह सब निःशुल्क है। माना जाना चाहिए कि ऐसी गतिविधियाँ पाठकों की संख्या में विकास के लिए सहायक होंगी।

❑❑

कथा/कहानी

तेंदुआ

दामोदर खड़से

हर आदमी चर्च की ओर देख रहा था। बहुत पुराना चर्च है यह। कभी शहर से बाहर एकांत में हुआ करता था। अब शहर उसे अपने में दबोच कर चारों ओर फैल गया है। चर्च की पत्थर की दीवारें पूरी गरिमा और वैभव के साथ अब भी खड़ी हैं। पत्थर का ही आहाता है। भीतर ढेर सारे पेड़ हैं। आसपास के फ्लैट इतने ऊँचे हो गये कि चर्च का यह इलाका दब–सा गया। अचानक सभी की निगाहें आज चर्च के भीतर झांक रही हैं। वैसे शाम के समय इस चौक का जब लाल सिग्नल होता है तब इतनी भीड़ यहाँ होती है। परंतु, आज इतनी अधिक भीड़ है कि ट्रैफिक ही दूसरी सड़क से मोड़ दिया गया। किसी भी वाहन को इस चौक तक पहुँचने नहीं दिया जा रहा। पर भीड़ है कि खिंची चली आ रही है। पुलिस बस्तोबस्त लगा दिया गया है।

दूर से गुजर जाने वाले लोग अपनी बात अपने इलाके में फैलाते। जितने मुँह उतनी बातें। अफवाहों ने भी अपना मुँह खोल ही दिया। धीरे–धीरे पूरे शहर में चर्च चर्चा का विषय हो गया।

दरअसल चर्च का अचानक चर्चा में आ जाने जैसा इस महानगर में कुछ भी नहीं घटा था। केवल घनी झाड़ियाँ ही कारण बनीं। वहीं एक घने पेड़ पर एक तेंदुआ दुबका मिला। आदमियों के खूंखार जंगल में एक घने पेड़ पर चीता अपनी जान हथेली पर रखकर शायद रात होने का इंतजार कर रहा था। पर ऑफिस के लिए जाते लोगों के समय के बाद किसी की निगाह उस पर पड़ ही गई। समय सुबह का ग्यारह का रहा होगा।

वह आदमी तेंदुआ... तेंदुआ... चिल्लाता हुआ भीड़ में पता नहीं कब गायब हो गया और उसकी आवाज चर्च के भीतर, पुलिस स्टेशन, फायर ब्रिगेड, कारपोरेशन, कलेक्टर ऑफिस तक दनदनाती हुई पहुँची। पलभर में चर्च का परिसर खाली हो गया। सारी भीड़ आहाते से बाहर अपने कुतूहल और कानाफूसी तथा विस्मय को आपस में बाँटती रही।

'यह जंगली नहीं लगता', वन विभाग का कर्मचारी होगा। विशेषज्ञ की तरह आवाज थी। जीप से उतरा था। आहाते के बाहर से इधर–उधर से वह तेंदुए को निहार रहा था।

'इसे किसी भी तरह बचाना चाहिए' वन्य–संरक्षण आंदोलन से जुड़े किसी व्यक्ति ने कहा।

'अरे, प्राणी संग्रहालय के अधिकारियों को बुलाओ।' अपनी सूझबूझ पर दाद की याचना करता कोई बोला।

फिर मोबाइल की बटनें चमकीं। कुतूहल गहराता गया। चीता पेड़ से झाँकता और घनी डालियों की तलाश में पेड़ का सर्वेक्षण करता ऊपर–नीचे घूमता।

छोटी क्लास के बच्चे अपनी साइकिलों, भरपूर बस्ते के बोझ का संतुलन बनाते एक झलक पाने के लिए अपने आपको तैयार करते और धड़कनों पर नियंत्रण करते हुए आगे बढ़ने की कोशिश करते। पर लोग उन्हें पीछे धकेल देते।

भीड़ बढ़ती जा रही थी। कुतूहल बढ़ता जा रहा था। बातें बनती जा रही थीं।

'अरे, अभी तो सर्कस भी नहीं है... यह कहाँ से भाग आया?'

'चुप्प! आज कल चिड़ियाघरों की हालत बहुत खराब है... पढ़ा नहीं शेर–बाघों को गलत दवाइयाँ दी जा रही हैं, सरकारी अस्पतालों की तरह...'

'अरे नहीं भई, ये तो विषाक्त खाने के डर से भागा हुआ है।'

'खामोश... उधर देखो...' किसी ने कहा ही था कि तेंदुआ बेचैन हो इधर–उधर ताकने लगा था। शायद छलांग लगाए इस सतर्कता में सब अपनी पतली गलियों की ताक में, इधर–उधर झाँकने लगे थे। तभी किसी ने कहा, 'झांसे में मत रहना यह जंगली और खूंखार लगता है। जिस पर भी झपटेगा। साफ कर देगा। भूखा भी लगता है।'

इस बीच प्राणी–संग्रहालय के अधिकारियों ने राहत की साँस ली। उनकी अपनी गिनती सही निकली। इसके कुछ दिन पहले उनकी गिनती में एक कम हो गया था। पर कोई खास बात नहीं– उसने अपने पिंजरे में ही दम तोड़ा था। वैसे भी उसमें भागने का दम ही कहाँ था। बीमारियों के नामों की भी क्या कमी थी। लेकिन वह बाघ इतना बदनसीब था कि आदमियों की तरह दो बार उसका पोस्टमार्टम करना पड़ा। पहली बार तो यह जानने के लिए कि किस विषाक्त खाने से वह मरा और दूसरी बार का कारण आदमी की राजनीति थी। अखबारों में वह बाघ बहुत छपा। फिर मरने के बाद भी उसकी चर्चा थी– 'नेताओं और अधिकारियों ने मिलकर बाघ की खाल बाँट ली।'

'उस बाघ के नाखून कई डालरों में बिके। एक एन.आर.आई. ने खरीद लिए।'

'आपसी रंजिश के कारण प्राणी–संग्रहालय के ही किसी कर्मचारी ने माँस में जहर मिलाकर बाघ को मारा है।'

रोज कुछ न कुछ छपता।

मेयर ने निर्णय दिया, 'बाघ को कब्र से निकाला जाए। दोबारा पोस्टमार्टम किया जाए। अफवाहों को दूर किया जाए।'

बेचारे बाघ के मृत शरीर की इतनी छीछालेदार होगी, उसने सपने में भी नहीं सोचा था। बाघ को कब्र से निकाला गया। शहर के कुछ पत्रकार, विरोधी दल के सदस्य, उच्चाधिकारी, वन्यप्राणी प्रेमी आदि लोगों ने देखा कि वे सब केवल अफवाहें थीं। सब लोग राजनैतिक दांव खेल रहे थे। खबरों में तथ्य नहीं था। बाघ की खाल गल रही थी। उसे फिर दफना दिया गया। इस तरह रोज उगती खबरें फिर मिट्टी के नीचे दफन हो रही थीं। पर बाघ तो अपनी जान गंवा चुका था, जिसके लिए वह कतई दोषी नहीं था। यह बात कई दिनों तक प्राणी–संग्रहालय के मुख्य अधिकारी को सालती रही थी। क्योंकि यह नौकरी उसके लिए केवल पेशा नहीं थी, उसका अपना मन पसंद काम भी था। वह प्राणियों में रमता था।

उसे जब मालूम हुआ कि एक तेंदुआ राह भटककर चर्च के पेड़ पर जा पहुँचा है तो वह तत्काल वहाँ भागा। अपने साथियों और साधनों से लैस होकर।

मौके पर उसने देखा कि भीड़ के बीच कुछ पुलिस वाले उस चीते को गोली का निशाना बनाने की सोच रहे हैं।

कोई कहता, 'टाइम मत गंवाओ। गोली चलाओ'

'प्रेस वाले कहाँ हैं।'

'अरे जरा फोटोग्राफर भी देखना।'

'वीडियो वाले हैं कि नहीं?'

'शाम के 'न्यूज' में आना चाहिए।'

'अरे, सब तैयार हैं।'

'आजकल सब बिकता है। फोटो, वीडियो, टेप।'

'सभी पहुँच गये हैं।'

'उन्होंने भीड़ और तेंदुए के फोटो भी उतार लिये हैं।'

'वे सब उतावले हो रहे हैं।'

'बस, गोली चले और वे एकदम सही वक्त पर कैमरा क्लिक करते रहें।'

इधर बंदूक चलाने वाले 'शूटर' के दिमाग में किसी रजवाड़े में देखी वह तस्वीर उभर आती, जिसमें कोई राजकुमार बाघ को मारकर उसकी छाती पर पैर रखकर अपने साथियों के साथ बंदूक पर हाथ टिकाए बड़े रौब के साथ खड़ा है। मन ही मन यह अदना–सा सिपाही उस फोटो के लिए फोटोग्राफर के जुगाड़ की चिंता में दिखाई दिया।

तभी प्राणी–संग्रहालय का मुख्य अधिकारी आ गया। पुलिसवालों को कह गया 'इसे कोई नहीं मारेगा। हम पकड़ेंगे।'

'यह अधिकार किसने दिया।'

'यह अधिकार हमारे पास पहले से ही है। यदि हम नहीं पकड़ पाए तो जिलाधिकारी पुलिस को कह सकते हैं।'

पुलिसवालों को लगा उनकी वर्दी ही किसी ने उतार ली। सब एक–दूसरे का मुँह ताकने लगे। ऑफिसर ने निगाहें तेंदुए की ओर फैला दीं और प्राणी–संग्रहालय का मुख्य अधिकारी हरकत में आ गया। वन विभाग के लोग साथ हो लिए। पर्यावरणवादी भी कुछ संतुष्ट लगे।

पेड़ के नीचे तिरपाल तानी गई। तेंदुए की दिशा में बंदूक तानी गई। उसे कुछ चुभते ही वह चिंघाड़ा। लोग सावधान हुए। थोड़ी ही देर में वह बेहोश होकर तिरपाल पर गिरा। बंदूक के माध्यम से बेहोशी का इंजेक्शन उसकी दिशा में 'फायर' किया गया था।

दूसरे दिन अखबारों के मुख्य समाचारों में तेंदुए ने अपनी भरपूर जगह बना ली थी। फोटो भी छपे थे। कुछ बॉक्स कॉलम भी थे। कुछ रोचक बातें भी थीं,

'यह तेंदुआ तो रात ग्यारह बजे एक सुनसान सड़क पर एक कार वाले को दिखा था।'

'पास के बंगले के कुत्ते रात भर भौंकते रहे।'

'वह तेंदुआ शायद पालतू होगा। किसी पर हमला नहीं किया उसने...।'

तरह–तरह की टिप्पणियाँ। पर्यावरण बचाओ आंदोलन के सदस्यों ने कलेक्टर को ज्ञापन दिया कि इस तेंदुए को घने जंगल में छोड़ देना चाहिए। विविध विभागों के उच्चाधिकारियों की बैठक में तेंदुए का भविष्य तय किया जाना था। उधर तेंदुआ होश में आ गया था। डॉक्टर उसकी देखभाल कर रहे थे। उसे खाना दिया गया। परंतु, विशेषज्ञ अभी भी तय नहीं कर पा रहे थे कि वह पालतू है या जंगली...!

जिस दिन तेंदुआ चर्च के आहाते में देखा गया था, उसी दिन पूरे शहर में एड्स संबंधी जनजागरण रैली का आयोजन था। कार्यकर्ता

अलग–अलग इलाकों से विशेषतः झोपड़ी–झुग्गियों और गंदी बस्तियों में अलग–अलग कार्यक्रम कर रहे थे। नुक्कड़ नाटक थे। लोगों के छोटे–छोटे समूहों में बातचीत थी। बदनाम बस्तियों में लोक–जागृति अधिक महत्वपूर्ण थी। प्रचार माध्यमों को जोड़ा गया था। ताकि एड्स विरोधी मुहिम तेज की जा सके। पर, आयोजकों ने पाया कि उनके कार्यक्रमों में प्रचार माध्यमों के लोग आए ही नहीं। न फोटोग्राफर, न वीडियोवाले, इक्का–दुक्का पत्रकार जरूर थे।

दरअसल एड्स विरोधी कार्यकर्ता, लोगों को समझा रहे थे कि एड्स कितना खतरनाक है। किस तरह फैलता है। कितना हिंस्र है। कैसे बचाव करें। किसी तेंदुए की तरह वह झपटता है और देखते–देखते केवल आदमी को ही नहीं घर–परिवार और समाज को भी लील लेता है।

लोग सुन रहे थे। नुक्कड़ नाटक देख रहे थे। एड्स का नाम लेते ही नाक–भौंह सिकोड़ रहे थे। उपहासात्मक मुस्कान भी कइयों के चेहरे पर थी। कार्यकर्ता अधिकांश कॉलेज के छात्र ही थे। पूरी तन्मयता से वे अपनी बात पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन एड्स के इस तेंदुए के प्रति लोगों के मन में न तो कुतूहल था और न ही किसी प्रकार का खौफ... उधर चर्च के पेड़ पर बैठे तेंदुए के प्रति कितना आकर्षण और रोमांच था।

बस यही बात सुबह के अखबारों और टीवी चैनलों पर भी दिखाई दी। पूरे शहर में तेंदुए की चर्चा। चर्च भी चर्चा में आ गया था। दबे पाँव समाज–शहर में घुस कर एड्स के तेंदुए ने अब तक सैंकड़ों लोगों का शिकार कर डाला था, पर लोगों का ध्यान उस ओर मुश्किल से ही गया। अखबारों ने किसी कोने में रैली की खबर छपी। सारी जगह तो तेंदुए ने घेर रखी थी। बेचारे इस तेंदुए के लिए अपनी जान बचाना बहुत भारी पड़ रहा था। उसे लेकर शहर में खलबली थी।

दूसरे दिन 'जू' में बहुत भीड़ थी– बच्चों की। नया तेंदुआ देखने आए थे वे। पर बच्चे तेंदुआ नहीं देख पाए। क्योंकि उस पर अब तक फैसला नहीं हो पाया था। बैठक शाम को थी। तब तक उसे एक अलग पिंजड़े में रखा गया था। उसने कुछ खाया नहीं था, यह सबके लिए चिंता का विषय था।

दोपहर चार के आसपास एक फोर्ड कार रूकी थी– जू के पास। उसमें से एक युवक नीचे उतरा था। उसकी निगाहें भी शायद कहीं कुछ तलाश रही थी। निराश होकर वह अपनी कार में बैठकर निकल गया।

एक पिता अपने बच्चे को नया तेंदुआ दिखाने आया था। इस कार को देखकर उसे कुछ हैरत हुई। उसे याद आया, 'यह कार तो रोज रात ग्यारह से बारह के बीच गाँधी चौक पर होती है...। यहाँ इतना बड़ा आदमी क्यों आया होगा।

'तेंदुआ देखने...।' उसके 12 वर्षीय बेटे ने कहा था।

'पर वह तो अंदर गया ही नहीं...।'

'हमें भी क्या मिला भीतर जाकर। नया तेंदुआ तो हमने देखा ही नहीं।'

'हाँ, उसे बाहर ही मालूम हो गया होगा।'

बाप–बेटे अंदाज–पर–अंदाज लगाते हुए बातें करते हुए, बस स्टॉप तक पहुँच गये थे। पर बाप रह–रहकर उस कार वाले के बारे में सोचता रहा।

रात की बैठक में तय हुआ कि तेंदुए को शहर से दूर घने जंगल में छोड़ दिया जाएगा। सुबह ग्यारह बचे का समय तय हुआ। सभी संबंधित अधिकारी, वन विभाग के अधिकारी और 'पर्यावरण बचाओ' के सदस्यों की उपस्थिति में चिड़ियाघर से तेंदुआ घने जंगल की ओर रवाना कर दिया गया।

सभी लोग इस बात पर सहमत थे कि वह पालतू नहीं था। क्योंकि ऐसा सोचने पर उसके मालिक की तलाश करने का एक अतिरिक्त काम आ जाता। यह बात चिड़ियाघर के मुख्य अधिकारी को लगी तो थी। पर वह इस झंझट में पड़ना नहीं चाह रहा था।

कल जो आदमी अपने बेटे को नया तेंदुआ दिखाने चिड़ियाघर लेकर गया था वह अपना कोई काम निपटाकर देर रात घर लौट रहा था। उसे वही फोर्ड गाड़ी चौराहे के किनारे खड़ी दिखाई दी। वह गौर से देखने लगा— यूं ही। एक आदमी पान की दुकान से गाड़ी की ओर बढ़ा। वह कार लपलपाते हुए सड़क से चिपककर तेजी से आगे बढ़ गई।

रात के बारह बज रहे थे। एक थ्री स्टार होटल के किनारे यह पान की दुकान थी। इसमें फाइव स्टार लोग ही आम तौर पर पान खाने आते हैं। कहते हैं यह पान वाला इन्कम टैक्स भी चुकाता है। बड़े—बड़े सेठों के यहाँ यहीं से पान जाता है। जैसे ही फोर्ड कार उसकी दुकान से आगे बढ़ी, यह आदमी उसके बारे में पान वाले से यूं ही पूछताछ करने लगा,

'ये सज्जन कौन हैं?'

'आपको नहीं मालूम...!'

'इसीलिए तो पूछ रहा हूँ।'

'अजी यह बहुत बड़े आदमी का बेटा है।'

'वह तो मालूम हो ही रहा है... फोर्ड कार है उसके पास...।'

'शहर का बहुत बड़ा अमीर आदमी है। पर शहर से दूर आधे घंटे की दूरी पर पहाड़ियों में एक बड़ा फार्म हाउस है, वहाँ रहता है।'

'पर बड़ा अजीब आदमी है। बच्चों की तरह चिड़ियाघर देखने आया था कल। इसी कार में।'

'अच्छा... पर आज तो तीन दिन बाद आया था वह, पान खाने...। वैसे रोज ही आता है। पान मेरे यहाँ से ही लेता है। कभी दूसरी दुकान पर नहीं जाता। बहुत गुमसुम रहता है। न कोई यार, न कोई उसका दोस्त है... कभी—कभी ड्रिंक्स लेता है। पर एकदम संतुलित। शायद आज भी लेकर आया था।

'मुझे तो बड़ा रहस्यमय लगा था— उस दिन भी, आज भी।'

'रहस्यमय?'

'हाँ, अभी लगा कि कार में और कोई था। देखा नहीं, किस तरह इधर—उधर देखकर उसने काँच से पहले भीतर झांका, फिर दरवाजा धीरे से खोलकर झट भीतर घुस गया।'

'मेरा ध्यान तो नहीं था। पर तीन—चार दिन पहले वह अचानक दुकान से गाड़ी की ओर भागा था। कार का दरवाजा खुला था। मैंने यहाँ से गौर से देखा था। वह कार के भीतर गया। फिर बेचैन हो बाहर आया। इधर—उधर परेशान—सा देखता रहा। तुरंत वहाँ से गायब भी हो गया।'

इतने में होटल से और तीन लोग बाहर आए। पान की दुकान के सामने थे। पान वाले ने कहा, 'अब तो बंद करने का समय कब का खत्म हो गया...।'

'अरे लगा दे यार पान... और बंद कर दे दुकान।'

'ठीक है' कहकर पानवाला पान बनाने लगा। आखिर बड़े लोग, बड़ा पान और बड़े नोटों की बात थी।

उन तीनों में से एक ने बात शुरू की,

'यार पार्टी जोरदार थी।'

'पार्टी से ज्यादा तो बातों का मजा आया।'

'बातों में क्या रखा है। बस, बात तो तेंदुए की जोरदार रही...।' कहकर तीनों ने एक—दूसरे की ओर देखा।

'किस तेंदुए की?।' अब दूसरा कुछ व्यंग्यात्मक मुद्रा में आ गया था।

'पहले ने कहा भीतर पार्टी में जिस आदमी की बात चल रही थी।'... फिर

इधर–उधर देखकर बोला, 'वही जो अब कंप्यूटर की एक बड़ी कंपनी का मालिक भी बन गया है। हाई वे पर उसने एक बड़ा फार्म हाउस बनाया है। शहर का सारा काला पैसा फार्म हाउस के रास्ते सफेद कर लेता है। कोई खेती–वेती नहीं होती वहाँ। पर सारी इन्कम उधर से दिखाता है। अपने घुम्मे बेटे के लिए पोल्ट्री फार्म लगा दिया था। इसकी भी कोई खास इन्कम तो है नहीं। पर मजदूर हैं, जिन पर वह तेंदुए की तरह झपटता है। बात–बात में पिस्तौल चलाता है... और बहुत कुछ करता है। फोर्ड गाड़ी में चलता है...

'...पर हाई–वे पर आज फार्म हाउस... करोड़ों की बात होगी। हमारे पापा ने ऐसा कुछ नहीं किया. .. बिजनेस के बाद बचा समय क्लब में टेबल टेनिस में गवा दिया... नहीं तो...।'

'चुप भी कर यार बाप को क्या कोसता है। खुद कुछ कर...।'

'पर हाईवे पर तो अब कभी नहीं मिलेगा...!'

'हाईवे का क्या रोना रोता है? सब डकैतियाँ हाईवे पर ही होती हैं। गाँवों के पीछे भी बहुत जमीन मिल सकती है... बोल खरीदेगा?'

'......'

'अरे कहाँ आ गए हम... खरीदने–बेचने की बात कल करेंगे।' तीसरे को लगा कि उतरते सुरूर पर अहं का पारा चढ़ रहा है।

पहले वाले ने पान की दुकान के किनारे चुपचाप पान चबाते इन तीनों की बातें सुनने वाले आदमी की ओर देखा। फिर पानवाले को। पानवाला पान बनाने में व्यस्त लग रहा था। पर उसकी तीसरी आँख उन तीनों से होते हुए पूछताछ करने वाले आदमी पर टिक गई, जो खामोश होकर बड़ी सतर्कता से सब सुन रहा था।

उन तीनों की बातों से लग रहा था कि वे फोर्ड कार वाले से अच्छी तरह परिचित हैं–

'अरे, यहीं वह रोज इसी वक्त आता है, फोर्ड कार में, पान खाने और वापस आधे घंटे की ड्राइव करता है।' उनमें से एक जो अधिक जानता था, दूसरे दोनों को बता रहा था।

'उस दिन भी वह आया था। बाहर हल्की–सी बारिश थी– असमय, इसलिए जल्दी में उसने कार लॉक नहीं की... और दुर्घटना घट गई।'

'तुम्हें कैसे मालूम?'

'हमारे बिजनेस लिंक्स हैं उनके साथ। यह सब निपटाने की जिम्मेदारी उन्होंने मेरे पिताजी पर सौंपी थी। पिताजी को उन लोगों ने सब कुछ बताया है। वह रोज तेंदुए को लेकर गाड़ी में घुमाता है। रात ग्यारह के बाद निकलता है और साढ़े बारह तक वापस आता है। उस दिन वह तेंदुआ पानी की टपटपाहट से बेचैन हो गया। उसने अपने पंजे कार के दरवाजे पर पटके। दरवाजा अचानक खुल गया और तेंदुआ भाग निकला। हालांकि वह उसके लिए बिल्कुल पालतू कुत्ते की तरह है। बुलाने पर भी आ जाता है। उसी ने बताया कि कार से बाहर निकलते ही तेंदुआ डरकर गली में छिपता हुआ आगे बढ़ गया। अब इसके लिए बहुत डर की बात थी। वाल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट की तहत उसे कैद हो सकती थी।'

'फिर क्या उन्होंने यह शौक छोड़ दिया?'

'अरे नहीं, तेंदुआ सही सलामत फार्म हाउस में पहुँच चुका है!'

तीसरे के विस्मय का ठिकाना न रहा। उसे विराम देने के लिए पहले ने कहा, 'इसके लिए उन्हें तीन लाख रुपये गिनने पड़े!'

❑❑

इमली चाची

महेश कुमार केशरी

राकेश का बचपन गाँव में ही बीता था। राकेश को दादी अच्छी तरह याद है। और याद है उसका गाँव। और इमली चाची। उसके घर में रहने वाले सैंकड़ों नौकर–चाकर। हाथी–घोड़े, बग्घियाँ, कार–मोटर, उसका बचपन बहुत ही ऐशो–आराम में बीता था। उसे अपने बचपन की लगभग हर बात अच्छी तरह से याद थी। गाँव का भूतिया कुआँ, आम का बगीचा। राजा की हवेली। इन्हीं स्मृतियों में उसे याद थी, इमली चाची। इमली चाची हवेली में आती थी और दादी और माँ की हमेशा मालिश करती। ये उनका रोज का काम था। नियम से वो सुबह–शाम दादी और माँ की मालिश करने के लिए आती थी। जहाँ मालिश की जाती उस कमरे में किसी को आने–जाने की इजाजत नहीं थी। एक तरह से वो जनानियों का कमरा था, वो। राकेश उस समय छोटा था। इसलिए उसको उस कमरे में आने–जाने की आजादी थी। राकेश को ये कमरा बड़ी अजीब लगता था। बड़ा ही रहस्यमयी। इमली चाची का मालिश का काम अधिक देर चलता। तो अक्सर वो राकेश के घर पर ही रूक जाती थी। इमली चाची के खाने के लिए एक थाली वहीं आँगन में पड़ी रहती थी। जिसमें दिन–दोपहर का खाना इमली चाची को दिया जाता था।

आते–जाते उसकी नज़र उस थाली पर पड़ जाती थी। लेकिन, फेंकी हुई गंदी थाली में खाना देने के बावजूद इमली चाची ने कभी इसका प्रतिकार या विरोध दर्ज नहीं किया।

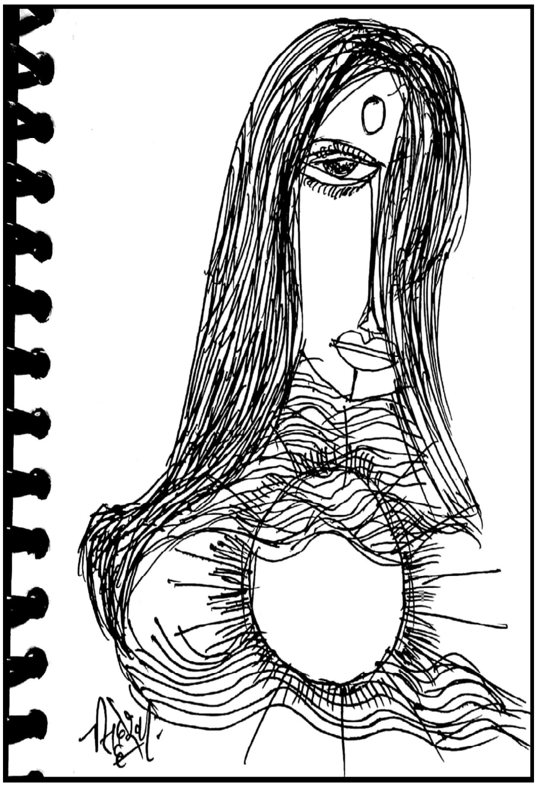

हालाँकि राकेश उनको उस गदी थाली में खाना खाते देखकर जरूर झेंप जाता था।

जिस थाली में उनको खाना दिया जाता था। वो गंदी और काली सी थी। दरअसल, इमली चाची का पूरा जीवन ही उपेक्षित था। जब इमली चाची चली जाती, तो उस पूरे कमरे को नौकर पानी और सर्फ से धोते। इस तरह से उस कमरे को तब तक पानी और सर्फ से धोया जाता जब तक दादी को तसल्ली नहीं हो जाती थी। कमरे के साथ–साथ दादी भी राकेश को रहस्मयी लगती थी। वैसे तो दादी इमली चाची से दूर–दूर ही रहती थी। लेकिन मालिश के समय वो अपनी कमर, पैर, पीठ, हाथ, कँधे बहुत प्रेम से मलवाती। लेकिन मालिश के बाद इमली चाची से दूर–दूर ही रहना पसंद करती। बात–बेबात झिड़क देती थी।

इमली चाची जिस चटाई पर बैठती थी। उसको भी घर के नौकर पानी और सर्फ से धोते। बहुत बार। जब तक दादी मना ना कर देतीं कि चलो ठीक है, अब धुलाई खत्म हो गई।

दादी का अजीबो–गरीब तरह का मनोविज्ञान था। जो हमारे समझ से बाहर का था। एक ही समय में वो इमली चाची से अलग–अलग कैसे व्यवहार कर सकती थी? मैं समझ नहीं पाता था। इस कारण दादी से ज्यादा बातचीत इमली चाची की नहीं होती थी। जो रहस्यमयी कमरा था। इसमें एक तह की हुई चटाई जिसपे गर्मियों में दादी और माँ के शरीर की मालिश हुआ करती थी। वो थी। जाड़े में उसी कमरे में बोरसी (एक तरह का पात्र जिसमें आग सुलगाकर सर्दियों में रखी जाती है) पड़ी रहती थी।

राकेश देखता उसके घर में इमली चाची से तो लोग और सब बातों में हँसी मजाक करते। लेकिन पलंग पर जाने की इजाजत इमली चाची को नहीं थी। घर की चीजों को हुआ जाने का डर था।

घर में वो माँ और दादी की मालिश चटाई पर ही करती थी। राकेश देखता इमली चाची से इस घर में दो तरह का व्यवहार लोग करते थे। उनके लिये जब वो घर आती। तो एक अलग तरह का बर्तन उनके लिये रखा जाता था। एक चाय पीने का काँच का ग्लास उस रहस्यमी कमरे के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे पड़ा रहता था।

जो औंधे मुँह घर के आँगन में बरगद के पेड़ के नीचे फेंका होता था। जिसमें धूल जमीं होती। जब तक दादी और माँ जीवित रहीं उसी ग्लास को पानी से धोकर इमली चाची को चाय दी जाती थी। जब–जब इमली चाची मालिश के लिए उस घर में आतीं तो उनको जो चाय दी जाती। वो उसी बरगद के पेड़ के नीचे पड़े गंदे से ग्लास में पानी से धोकर दी जाती थी।

राकेश अक्सर अपनी दादी से पूछता–"दादी माँ, इमली चाची को आप लोग कप में दूध वाली चाय क्यों नहीं देते। उनको आँगन में खराब पड़े फेंके हुए काँच के ग्लास में ही लाल चाय क्यों देते हैं ?"

दादी, हँसती– "बेटा वे लोग नान्ह जात (छोटी जाति) के हैं।"

इमली चाची जब अपने घर जाती तो उनको रात की बची हुई बासी रोटियाँ एक कपड़े में बाँधकर दी जाती। यही इमली चाची की मजदूरी थी। चँद बासी रोटियों को लेकर ही इमली चाची हवेली पर आकर माँ दादी और घर की जनानियों की तेल से घँटों मालिश करती थी। खैर, इमली चाची मेरे लिये

कौतूहल का विषय थी। माँ और दादी इमली चाची को विधवा कहती। मैं एक बार विधवा का मतलब माँ से जानना चाहता था। माँ ने ही मुझे बताया था। विधवा का मतलब बेवा होता है। इमली चाची जवानी के दिनों में ही विधवा हो गई थी। उनके कई लड़के और बच्चे थे। उनका घर मिट्टी का था। उनकी फूस की मड़ई थी। जब भी मैं उधर से गुजरता आँगन में मुर्गे, मुर्गियाँ इधर–उधर भागते हुए दिखाई देते। इमली चाची के आँगन में बकरियाँ बँधी होती। कई बार जब मुझे तेज बुखार आता। गाँव के वैध चाचा बकरी का दूध पिलाने को कहते। ये दूध मुझे इमली चाची के यहाँ से मिलता था।

इसके अलावा इमली चाची खेतों में मजदूरी भी करती थी। भडभूजन के यहाँ जब भूँजा, भूँजाता था तो इमली चाची जँगल से पत्ते बटोरकर लाती। लकड़ियाँ चुनकर लाती।

राकेश धीरे–धीरे बड़ा होता गया। राकेश की मसें भींग आई थी। अब जनानियों के कमरे में राकेश को जाने की इजाजत नहीं थी। फिर, राकेश पढ़ाई के लिए शहर चला गया। धीरे–धीरे राकेश अब शहर का होकर रह गया। उसकी व्यस्तताएँ बढ़ती चली गईं। वो यदा–कदा एकाध दिन के लिए गाँव लौटता। शहर से कुछ दिनों के लिए गाँव चला जाता तो गाहे–बगाहे उसकी नज़र इमली चाची पर पड़ ही जाती थी। इमली चाची को देखते ही उसे वह रहस्यमयी कमरा बुलाता नज़र आता। उसने सोचा कि वह फिर से जाकर देखे कि दादी माँ या माँ की मालिश इमली चाची क्या पहले की तरह ही करती हैं। वो उस चटाई के बारे में सोचता। उसके बाद फर्श के पानी और सर्फ से धुलाई के बारे में सोचता कि क्या वे चीजें पहले की तरह ही क्रमवत वैसे ही चल रहीं हैं या फिर शहर की तरह वहाँ भी अब बदलाव आ गया है। जहाँ– जाति–पाति का कोई बंधन नहीं है।

खैर, राकेश जब भी इमली चाची से मिलता तो वो अभिवादन में उनके पैर जरूर छूता। शिक्षा का प्रभाव राकेश पर पड़ना तो अवश्यभावी था। हालाँकि इस बात से राकेश की दादी राकेश पर बहुत गुस्सातीं और उसको बुरा भला कहतीं।

राकेश की शादी गाँव में ही हुई थी। उसकी पत्नी अभी सास–श्वसुर की सेवा में दिन– रात लगी रहती थी। राकेश की पत्नी इधर गर्भ से थी। गाँव में तो ऐसे भी अस्पताल कम होते हैं। इमली चाची ही गाँव में महिलाओं को आज भी प्रसव कराती थी। जिस दिन राकेश की पत्नी को बच्चा होने वाला था। उस दिन ही रात को अचानक से राकेश की पत्नी को बहुत तेज दर्द पेट में उठा। रात को ही राकेश इमली चाची के घर से इमली चाची को बुलाकर ले गया था। सारी रात इमली चाची ने जागकर ही बिताई। सुबह–सुबह राकेश की पत्नी को बच्चा ठीक–ठाक से हो गया। राकेश इस बार इमली चाची का ऋणी हो गया था। गाँव आता तो इमली चाची के लिये कोई–ना–कोई उपहार साड़ी, कपड़े या मिठाई लेकर जरूर आता।

धीरे–धीरे राकेश का गाँव आने–जाने का सिलसिला थम गया था। इधर एक दिन दादी माँ के बाद माँ का भी स्वर्गवास हो गया था। दादी माँ के स्वर्गवास में राकेश गाँव गया था। उस समय इमली

चाची से उसकी मुलाकात हुई थी। राकेश इमली चाची से मुखातिब होकर बोला– "चाची, आपने, अपनी बहू की उस रात बहुत सेवा की। आपके कारण ही मेरा बच्चा सकुशल इस धरती पर जन्म ले सका। मन करता है, आपके पाँव दबाऊँ। कहते हैं, ना लोग कि माँ के चरणों में ही स्वर्ग होता है। एक दिन मैं आपके घर आऊँगा और आपके पैर दबाऊँगा।"

राकेश की पत्नी को जो लड़का पैदा हुआ था। उसका एक पैर टेढ़ा था। इमली चाची ने सौरी वाले दिन से ही विक्रांत (राकेश का लड़का) के पैरों में तेल मल–मलकर पैर को ठीक किया था। करीब चार–पाँच महीने की मालिश के बाद विक्रांत का पैर सीधा हो गया था। इस बात को बीते चार पाँच–साल हो गये थे। राकेश, विक्रांत को जब भी क्रिकेट खेलते हुए या दौड़ते हुए देखता तो इमली चाची याद आ जाती। तब राकेश अपने आपको कोसता कि कितनी सीधी–साधी स्त्री के साथ उसके घर वालों ने दुर्व्यवहार किया।

इमली चाची हँसकर कहती– "बबुआ, मुझे नरक में भेजोगे क्या ? कहाँ तुम ऊँची जाति के होके मेरे पाँव दबाओगे। कहाँ हम नान्ह जात के लोग और कहाँ तुम ऊँची जाति के लोग।"

"इमली, चाची मैं जाति के हैसियत से नहीं। बल्कि बेटे की हैसियत से आपके पाँव दबाऊँगा।"

दादी माँ की मृत्यु के दो–तीन महीने बाद राकेश की माँ लंबी बीमारी के बाद चल बसीं।

माँ, की अंत्येष्टि के बाद एक दिन राकेश लायब्रेरी में कोई किताब उलट–पलट रहा था कि तभी उसकी नज़र बरगद के पेड़ पर चली गई। टहलते–टहलते राकेश ने बरगद के आसपास नज़र दौड़ाई। लेकिन अल्मूनियम की वो गंदी थाली उसे कहीं नहीं दिखी। उसकी नज़र काँच के गंदे ग्लास को ढूँढ रही थी। लेकिन वो काँच का गंदा ग्लास भी बरगद के आसपास कहीं नहीं दिखा। राकेश तेजी से बैठक पार करते हुए नौकरों के कमरे में गया।

और, एक नौकर से पूछा– "वो काँच का गंदा, ग्लास और अल्मूनियम की गंदी थाली। जिसमें इमली चाची खाना खाती थी। वो नहीं दिख रहे हैं। तुम लोगों ने फेंक दिया क्या ?"

"अब, उसकी क्या जरूरत है?" नौकर बोला।

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? इमली चाची गुजर गईं ?"

"कब ?"

"हो गये करीब बीस–पच्चीस दिन ?"

राकेश का कलेजा धक् से करके रह गया।

"तुम लोगों को एक बार फोन करना चाहिए था।"

"अब एक चमईन के मरने पर आपको फोन करना हमें ठीक नहीं लगा। ये बहुत छोटी–सी बात थी।"

"वो चमईन नहीं मेरी माँ थी। माँ।"

"क्या ?" नौकर कुछ समझ नहीं पाया।

राकेश की आखिरी ख्वाहिश थी कि वो एक बार अपने हाथों से इमली चाची का पैर जरूर दबाये।

टहलते हुए राकेश उस कमरे तक गया। कमरे में चटाई वैसे ही फैली हुई थी। लगा जैसे, इमली चाची माँ को तेल लगा रही हो!

❑❑

भूत

डॉ. संजीव कुमार

कमला सवेरे ही ट्रेन से कानपुर पहुँची थी उसका भाँजा विजय अपनी पत्नी सुनीता के साथ रहता था। वह अपने भाँजे के घर पर रूकी थी। वह पहुँचते ही तैयार होने के लिए बाथरूम में घुस गई। बाकी लोग अपना सामान समेटने और ठिकाने में लगाने में व्यस्त हो गये। सुनीता चाय और नाश्ता बनाने के लिए चली गई। विजय को चाय पहले ही मिल चुकी थी। अतः वह सोफे पर बैठे चुस्कियाँ ले रहा था। उसके हाथ में आज का अखबार 'जनसत्ता' था, जिसमें संपादकीय पढ़ना उसको बहुत रुचिकर लगता था। तभी अचानक आवाज आई भूत... भूत. .. भूत! सब लोग अचानक से उस तरफ देखने लगे जिधर से आवाजें आ रही थीं। कमला हाथ में तौलिया लिए बाथरूम से बाहर चली आ रही थीं। उसकी आधी साँस अंदर और आधी साँस बाहर थी। विजय ने पूछा– ''क्या हुआ'' बुआ– विजय भतीजा था कमला का।

कमला घबराते हुए बोली– ''बाथरूम में भूत है।'' विजय ने कहा ''कहाँ?'' कमला ने बताया कॉमोड के बगल में भूत है और वो जेट की रस्सी हिला रहा है। विजय ने सुनीता को बुलाया और बोला सुनीता ''पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ।''

सुनीता बोली ''एक आध बार पहले भी देखा था, लेकिन जैसा बुआ बता रही हैं वैसा तो कभी नहीं देखा।''

''बुआ की बातें सुनकर सुनीता थोड़ा सहम गई। वह तो पहले ही भूतों से डरती थी। उसके घर में भूत है ऐसा सुनकर वह बहुत डर गई।''

वह विजय से बोली ''यह सब आपकी लापरवाही है।'' यह नहीं कि टाइम से बाबा जी को बुलाकर दिखा देते और भूत की छुट्टी करवा देते। '' अब झेलो''! विजय बोला– ''मुझे क्या पता इतनी सीरियस बात है।'' ऐसा तो तुमने कभी बताया नहीं मुझे। ''विजय मोबाइल उठाते हुए बोला– ''अभी बुलाता हूँ बाबाजी को।'' विजय ने बाबा जी को फोन मिलाया और बोला– ''बाबा जी में विजय बोल रहा हूँ, आप तुरंत जाइये।'' हमारे बाथरूम में भूत घुस आया है।''

कमला ने विजय को डाँट लगाई। सुनीता ठीक ही कह रह रही है कि ये तेरी लापरवाही है। तुझे तुरंत एक्शन लेना चाहिए था। अब सोच भला सुनीता घर में अकेली होती और भूत ऐसी हरकत करता वो तो मर ही जाती और तू ऑफिस में काम करता रहता और लौट कर आता तो सुनीता की जगह सुनीता की लाश मिलती।

विजय घबरा गया उसने बाबा को फिर फोन लगाया। बाबा ने फोन उठाया और विजय के पूछे बिना ही बोला रास्ते में हूँ, अभी 10 मिनट में पहुँचता हूँ।

सब सोफे पर माथा पकड़ कर बैठे थे और बाबा के आने का इंतजार कर रहे थे।

कुछ ही देर में बाबा अपने एक चेले के साथ गाड़ी से उतरे। बाबा कार से ही चलते थे, विशेषकर जब वह क्लाइंट्स के यहाँ जाते थे। उन्होंने होंडा सिटी ले रखी थी, जिसका पेट्रोल और ड्राइवर का

खर्चा बाबा क्लाइंट्स से वसूल करते थे।

बाबा ने आते ही कहा– शम्भो... शम्भो'' । विजय ने बाबा का स्वागत किया और सोफे पर बिठाया। सुनीता उनके लिए गर्म–गर्म गाजर का हलवा और गर्मा–गर्म चाय ले आई। बाबा ने सुनीता से एक गिलास पानी मँगवाया सुनीता के पानी देने पर बाबा ने गाजर के हलवे और चाय का आचमन किया, हाथ जोड़े और पूरा हलवा उदरस्थ कर गए।

एक डकार लेकर बाबा ने विजय से पूछा– ''कहाँ है भूत?''

विजय बोला– ''बाबा बुआ ने तो बाथरूम में बताया।''

बाबा बोले बुआ को बुलाओ साथ चलकर बतायें– कहाँ है भूत?

विजय के बुलाने पर बुआ आ तो गई पर बाथरूम में जाने से मना कर दिया। बाबा ने अपने हाथ में मोर पंखों की झाड़ू– लेकर खरामा–खरामा झाड़ू– इधर–उधर घुमाते हुये बाथरूम में प्रवेश किया। इसके साथ ही वह कोई मंत्र बुदबुदा रहे थे जो शायद उन्हें मालूम नहीं था कि वह क्या बुदबुदा रहे हैं। उनके पीछे–पीछे उनका चेला इधर–उधर सिर घुमाता हुआ बाथरूम में प्रवेश कर गया। बाहर से ही कमला बुआ ने आवाज दी ''कॉमोड के बगल में जो जेट है उसके अंदर भूत है या उसके आस–पास भी हो सकता है।''

बाबा के चेले ने कॉमोड का ढक्कन बंद कर दिया और बाबा उस कॉमोड पर बैठकर उस भूत का निरीक्षण करने लगे। उन्होंने भी देखा कि जेट का पाइप जो स्टील की बनी थी वह थोड़ी–थोड़ी देर में लहरा उठता था। बाबा ने कॉमोड पर बैठे हुए ध्यान लगाया, मंत्र बुदबुदाया और जोर से बोले शम्भो... शम्भो! उन्होंने अपनी मोर पंख वाली झाड़ू कई बार जेट की पाइप पर मारी और पूछा कौन है ''तू, क्यों आया है यहाँ?'' लेकिन कोई जवाब नहीं आया। जेट का पाइप पूर्ववत् थोड़ी–थोड़ी देर में लहराता रहा।

बाबा जी लगभग एक घंटे तक पाइप पर झाड़ू का प्रहार करते रहे पर वह टस–से–मस नहीं हुआ और बाबाजी पसीना पोंछते हुए बाहर आ गए।

विजय घबरा गया और उसने हाथ जोड़ कर बाबा से पूछा ''बाबा भूत भाग गया कि नहीं?''

बाबाजी ने धीमी आवाज में जवाब दिया– ''बहुत सख्त जान है पुराना भूत है'' । इसको भगाने के लिए लंबी पूजा करनी पड़ेगी। विजय बाबू 10 हजार जमा करा दीजिए सामग्री के लिए। मैं रात्रिकाल में इस भूत की खबर लेता हूँ। बड़ा चालाक बना फिरता है। जला दूँगा इसको। ''न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, और संपूर्ण मुक्ति।'' फिर विजय की तरफ देखते हुए बाबाजी बोले– ''कितने समय से यह हो रहा है, मेरे पास खबर आ रही है कि भूत हाल में ही आया है, पहले शायद इसके इतना हिलने की शिकायत नहीं आई होगी।''

विजय ने 10 हजार रुपये बाबा को पकड़ाते हुए पूछा– ''इसमें आपका मेहताना भी शामिल है कि नहीं।'' बाबा ने कहा ''नहीं बेटा, मेहताना इसमें कहाँ से शामिल हो जाएगा। मेहनताना तो अलग से लगेगा। इस हिसाब से कि कितना टाइम और कितना परिश्रम भूत को भगाने में लगता है''– यह समझाते हुए बाबा ने नोटों की गड्डी जेब के हवाले करते हुए विजय को प्रस्थान की सूचना दी। और दिलासा भी दिया– ''तुम चिंता मत करो बेटा भूत कितना भी सख्त जान हो मेरे हाथों से बच कर नहीं जा सकता। मैंने इससे अधिक कठोर जान वाले भूतों को आग के हवाले किया है। इसको भी जला कर दम लूँगा।

बाबा के चले जाने के बाद सुनीता रोने लगी। विजय भी अंदर से घबराया हुआ था, पर संभलने की कोशिश कर रहा था। कमला बोली ''बाबा तो गुणी लगते हैं। हमें भरोसा है कि वह भूत को जरूर भगा देंगे। आज भी उन्होंने अपनी तरफ से भरसक प्रयास किया।'' ऐसी ही शंकाओं, भ्रांतियाँ, अनुभवों,

सुनी सुनाई खबरों आदि के विस्तारपूर्वक विश्लेषण के बाद विजय ने बाबा के द्वारा भूत भगा, जाने तक बाथरूम को न यूज करने का फैसला किया और उसमें ताला लगा दिया।

कमला बोली ''विजय बेटा– मेरी समझ में हमें इस कमरे को ही बंद कर देना चाहिए। कल जब बाबा भूत भगा देंगे तो फिर से खोल देंगे।'' विजय के पास बुआ की बात मानने के अलावा कोई रास्ता नहीं था, किंतु घर में दो ही कमरे थे जिसमें विजय और सुनीता प्रयोग करते थे और दूसरा अतिथि आदि के लिए होता था।

एक कमरा बंद करने के फलस्वरूप विजय को रात सोफे पर लेटकर गुजारनी पड़ी। कमरे में सुनीता और कमला बुआ ने आराम फरमाया।

सबेरे उठने पर विजय की पीठ में करारा दर्द हो रहा था। रात में उसे ठीक से नींद भी नहीं आई थी। दिमाग में तनाव तो वैसे ही था। ब्रश करने के बाद उसे जबरदस्त उल्टी हुई और वह निढाल पड़ गया। फलस्वरूप, उसे ऑफिस से छुट्टी लेने पड़ी। विजय परेशान था– यह सोचकर कि छुट्टियाँ तो पहले ही खत्म हो चुकी हैं। अब तो छुट्टी बिना तनख्वाह के ही मिलेगी।

अभी विजय इन परेशानियों से जूझ ही रहा था कि बाबा ने उसे फोन करके सूचना दी कि भूत म्लेच्छ जाति का है और मरने से पहले दुर्दांत डकैत था। उसके हाथों एक दर्जन से ज्यादा खून हुए थे और एनकाउंटर में पुलिस की गोली से मारा गया था। भूत अपने साथ हुए अन्याय से बहुत क्रोध में था और सबको खत्म कर देने की धमकी दे रहा था। लेकिन रात भर की पूजा के बाद हमने उसे यथास्थिति बना, रखने के लि, मजबूर कर दिया है लेकिन उसे भगाने के लिए और पूजा करना पड़ेगी। जिसमें लगभग 15000 रुपये का खर्चा आएगा। अगर भूत को भगाने की पूरी तैयार करनी है तो 15000 रुपये पेटीएम कर दो। ''विजय ने मोबाइल उठा कर बैंक अकाउंट में अपना बैलेंस चेक किया और 15000 रुपये की आहूति देने के बाद बाबा को पुनः फोन किया। विजय ने कहा 15000 रुपये– पेटीएम कर दिए हैं। बाबा अब जल्दी से भूत को भगाइए और हमें इस परेशानी से मुक्ति दिलाइए।''

बाबा ने शम्भो... शम्भो का जाप करते हुए विजय को आश्वस्त किया कि रात की पूजा में भूत को जरूर पटखनी दे देंगे और उसे भागने के लिए मजबूर कर देंगे।

विजय ने हैरानी से पूछा– ''बाबा अगर फिर भी न भागा तो... ?

बाबा ने कहा– ''वो क्या उसका बाप भी भागेगा।'' अभी वह बाबा को जानता नहीं कि बाबा उसको कहीं नहीं छोड़ेगा। तू चिंता मत कर विजय। शम्भो... शम्भो..!

नींद पूरी न होने और सोफे पर लेटने के कारण लगी ठंड से विजय को थोड़ी देर में बुखार आ गया। वह बिस्तर पर कंबल ओढ़ कर लेट गया। तभी बुआ आई और बोली मुझे तो भूत पहले ही हठी लगता है। जैसा वह मरने से पहले डकैत था वैसा ही व्यवहार अब भी कर रहा है। तुम्हारा बुखार उसी भूत के गुस्से का परिणाम है। ध्यान रखना विजय, उस कमरे के गेट के पास न जाना, न उस ओर देखना। मैं सुनीता को भी समझा देती हूँ कि वह भी एतहियात बरते और भूत के भागने तक कैंची का प्रयोग न करे और न सिलाई करे क्योंकि भूत अगर किसी कपड़े के साथ सील गया तो उसे भगाना मुश्किल हो जाएगा।

थोड़ा रूक कर कमला बुआ ने अपना विशेष ज्ञान विजय को देते हुआ बोला– ''मैंने तो सुनीता को कह दिया है कि आज सब्जी और दाल में तड़का भी न लगाए। बहुत चिढ़ते हैं भूत।''

बुआ की बातें सुनकर विजय समझ गया कि आज का खाना उबला हुआ होगा। जिसे पानी के साथ गले से नीचे उतारना होगा और वैसा ही हुआ।

डिनर में विजय को जैसे व्रत वाला खाना खाने को मिला। रात को फिर वही ड्राइंग रूम में सोफे पर सोने की नौबत आई, क्योंकि उसे भी लगने लगा था कि ये सब भूत के कारण ही यह सब हो रहा था, लेकिन उसने ठान लिया था कि वह भूत को भगाकर ही रहेगा।

उधर सुनीता के पास उसके भाई का फोन आया तो उसने दो दिन की कहानी मिनट टू मिनट उसको बताई। तब उसके भाई ने समझाया ''अरी बहना तू किस धमाल में पड़ी है। प्लम्बर को बुला और पाइप बदलवा दे फिर बताना लहराता है कि नहीं। ''सुनीता ने जल्दी से भाग कर ड्राइंग रूम में बैठे विजय को वाकया बताया। विजय के चेहरे पर थोड़ी मुस्कान टपकी जैसे उसका बुखार अचानक ही उतर गया हो। लपक कर उसने मोबाइल उठाया और सेक्टर की मार्केट में सेनेटरी स्टोर को फोन लगाया। स्टोर वाले ने बताया कि प्लम्बर है तो लेकिन कल सवेरे आ पाएगा। अभी उसका काम अधूरा पड़ा है।'' विजय को बहुत जल्दी थी उसने कहा प्लम्बर से बात करा दीजिए। स्टोर वाले ने अपने प्लम्बर ब्रह्मा को फोन पकड़ा दिया और बोला ''ले ब्रह्मा तू ही बात कर ले।''

ब्रह्मा ने बोला ''साहब सुबह ही आ पाऊँगा, अभी तो किसी क्लाइंट के यहाँ काम कर रहा हूँ।'' उनका बाथरूम खुला पड़ा है।

''विजय ने चिरौरी दी भइया तू दुगने तिगने पैसे ले ले पर अभी आ जा। ब्रह्मा बोला अभी नहीं आ सकता, 10 बजे तक ही आ पाऊँगा। ओवरटाइम का चार्ज लगेगा। विजय ने बोला मंजूर है।''

दोनों पति–पत्नी व्याकुलता में बैठे ब्रह्मा का इंतजार कर रहे थे, और ब्रह्मा विलोप हो गया था। बुआ पूजा कर रही थीं, इसलिए उनको इन बातों का पता न चला।

11 बज गये थे। ब्रह्मा का न अता न पता। विजय बार–बार फोन मिला रहा था। पर फोन बंद आ रहा था। विजय की चिंता बढ़ती जा रही थी। बहरहाल सवा ग्यारह बजे घंटी बजी। सुनीता न दौड़ कर दरवाजा खोला। ब्रह्मा घर के अंदर दाखिल हुआ। जैसे भगवान ब्रह्मा अवतार लेकर आए हो। अंदर आकर ब्रह्मा सोफे पर बैठकर विजय से पूछा ''माजरा क्या है साहब!'' विजय ने उसे सारी कहानी सुनाई और बताया कि उसके साले जी ने बताया है जेट का पाइप बदलने से इस समस्या का निदान हो सकता है।

ब्रह्मा बोला ''देखता हूँ साहब'' और यह कहकर अपना टूलबॉक्स उठाया, विजय ने उठकर ताला खोला, बत्ती जलाई। ब्रह्मा अंदर गया एक नज़र डाली और लौट कर पूछा– ''साहब ऊपर प्रेशरपंप लगा है क्या?''

विजय बोला– ''हाँ''।

ब्रह्मा बोला ''मुझे वहाँ ले चलिये।'' विजय आगे–आगे और ब्रह्मा पीछे–पीछे चल पड़े और छत पर पहुँचे। छत पर घुप अँधेरा था। विजय ने मोबाइल की रोशनी की, ब्रह्मा ने प्रेशर पंप को देखा और उसके रेगुलेटर को एडजेस्ट किया। उसके बाद दोनों फिर बाथरूम में आए। जेट पाइप का लहराना बंद हो गया था। ब्रह्मा ने बताया कि ''प्रेशर ज्यादा होने के कारण पाइप लहरा रहा था।'' विजय ने जोर से ब्रह्मा का हाथ पकड़ा और उसका हाथ सिर से लगा लिया। ''हम तुम्हारे बहुत एहसानमंद रहेंगे ब्रह्मा। तुमने हमें बहुत बड़ी परेशानी से मुक्त कराया है''– विजय बोला।

तभी बुआ पीछे से आ गई। पूछने लगी क्या हुआ। सुनीता ने बताया ठीक हो गया बुआ। पानी का प्रेशर ज्यादा था उसे ठीक कर दिया ब्रह्मा ने।

बुआ बोली ''विजय बेटा मेरी मान लो वहाँ धूनी सुलगा दो। क्या पता वहाँ सचमुच भूत हो और तुम लोगों की छेड़छाड़ देखकर चुप हो गया हो। सुनीता ने बिना पूछताछ के काली मिर्च और कपूर की धूनी सुलगा दी और इस प्रकार भूत भाग गया।

❑❑

दामोदर खड़से की कविताएँ

तुम लिखो कविता

तुम लिखो कविता
कविता कवच होती है
हर अशुभ के लिए
डरो मत तुम
घनघोर जंगलों, घुप्प अँधेरों से!
आसपास कितनी ही हो हिंस्त्र चिंघाड़
या पैरों के नीचे जहरीली फुफकार
मत डरो तुम!

झाँको भीतर एकाग्र अपने
छलक रहा है ज्योतिकलश!
डुबाओ पलभर कलम अपनी
और लिखो कविता तुम!
सारे अँधेरों को चीरकर
तिरिछ बन उतर आऊँ मैं
अंधी सुरंगों में भी!

ज्योति से नहाए शब्द–मृगछौने
टपलक सहलाओं तुम
लचक–लचक इतराएँ शब्द
ज्योति–ज्योति बन जाओ तुम!
मैं संजोऊँ तुम्हें कदम–कदम
भीतर–बाहर तुम्हारे
तुम लिखो कविता
कलश बन जाऊँ मैं
तुम लिखो कविता...!

असफलता

जब भी मैंने, डुबकी लगानी चाही
सारा मान सरोवर, चुल्लू हो गया!

परिधि

परिधि
मुझे चारों ओर से
कसी जा रही थी...
तभी–
मेरे सशस्त्र हाथों ने
बगावत कर दी...
परिधि अब...
हटते–हटते
क्षितिज हो गई है!

आसार

मैं,
अपने ही दलदल में
धँसा जा रहा हूँ
चारों ओर के कीचड़ में
फँसा जा रहा हूँ
लोग मुझ पर
तरस खाते हैं
सूरज, धीरे से
मेरे कानों में कहता है
घबराओ नहीं;
तुममें–
कमल होने के आसार नज़र आते हैं!

अब वहाँ घोंसले हैं

एक सूखा पेड़
खड़ा था, नदी के किनारे
चुपचाप
विरक्त
पतझड़ की भभूति लगाये
अंतिम घड़ियों के ख्याल में...

नदी
नदी वैसे
अर्से से
इस इलाके से बहती है
पेड़ के पत्ते
सूखकर
इसी नदी में बह लेते थे
नदी ने
कभी ध्यान नहीं दिया।

इस बरसात में
जब वह जवान हुई
तो उसका किनारा
पेड़ तक पहुँचा
सावन का संदेशा पा
लहरों ने बांध दिया इक झूला
पेड़ के पाँवों में...

पेड़ हरियाने लगा
उसकी भभूति घुलने लगी
और आँखों के वैराग्य ने
देखा एक छलकता दृश्य
नदी के हृदय की ऊहापोह...
भंवर...
फेनिल...
बस, झूमकर
झूमता रहा वह
अब वहाँ घोंसले हैं
चिड़िया रोज चहचहाती हैं...
नदी का किनारा
वापस लौट भी जाए
कोई बात नहीं
... पेड़ की जड़ें
नदी की सतह में उतर चुकी हैं!

लौट आओ तुम

लौट आओ तुम
कि तुम्हारे जाते ही
मुरझा जाते हैं गेंदे के फूल
बंदनवार के पात!
बुझ जाते हैं/दीवाली के दीये...

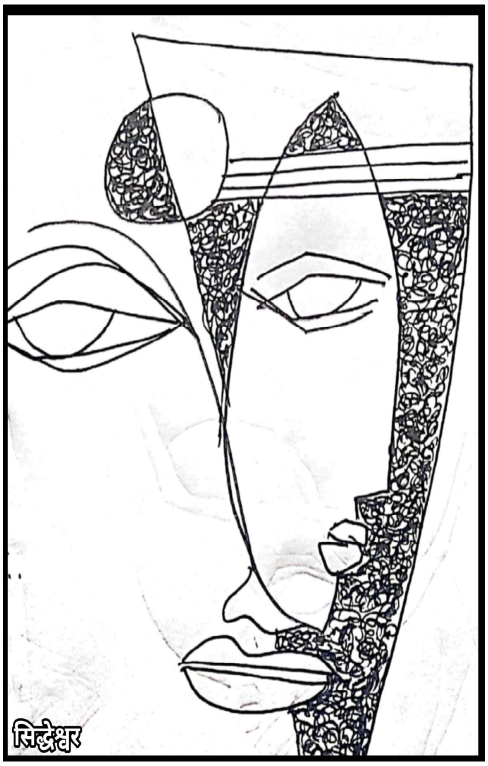

सड़कों पर पड़ी होती हैं
पटाखों के खाली खोल
फुलझड़ियों की जली–काली सलाखें
बहरे काम
और पिछली रोशनी से धुंधयायीं आँखें
सामने का अँधेरा
झपटता है मुझ पर...

तुम क्या गए
जैसे असमय खो गई दीवाली
खाली–खाली घर–द्वार
उजाड़–सी गृहस्थी
कोसती उम्र/भटकती इच्छाएँ
टूटता विश्वास
और हड़ताल पर आस्थाएँ
तुम्हारे आने की खबर भर से
पहाड़ों पर लौट आती है हरियाली
चेहरे पर मुस्कान/दिल में सुकून
और अपनी पहचान...
इसके पहले कि
पगडंडियों पर उग आए जंगली घास
तुम लौट आओ
लौट आओ तुम!

उम्मीद

कभी–कभी लगता रहा मुझे
समय कैसे कटेगा ज़िंदगी का
जब होगा नहीं कोई फूल
बहेगी नहीं कोई नदी
पहाड़ हो जाएँगे निर्वसन
मौसम में न होगा कोई त्योहार
हवाओं में होगी नहीं गंध
समुद्र होगा खोया–खोया उदास
शामें गुमसुम–गुमसुम
और सुबह में न कोई उल्लास
कैसे कटेगा तब समय
ज़िंदगी का?

सोच–सोच मैं
होता रहता सदा अकेला
पर आ जाती है ऐसे में
कोई आवाज़ भीतर से
मँदिर की घंटी की तरह
ज्यों जाग गए हों
देवता सारे
चारों ओर
हो रहे मंत्रोच्चार से
लद गए हों वृक्ष–वनस्पतियाँ
धूप की रोशनी में
दिख रहा हो सब पारदर्शी
जाग गई हो प्रकृति सारी
और समय मेरे कानों में
फुसफुसाता है ज़ोर से
मैं थाम लेता हूँ अचकचाकर
पानी से भरे–भरे बादलों को
और नमी मेरे भीतर तक
दौड़ जाती है...

अपनी धरती से उठती आवाज़
जगाती उम्मीद बहुत है
फिर लगता है, बहुत सहारे बाकी हैं अभी!

❑❑

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

बीता वर्ष

बीत गया
एक और साल
और छोड़ गया पीछे
अपनी यादें।
कुछ मीठी भी
कुछ कड़वी भी
कुछ पल खुशियों के
कुछ पल अभिशाप भरे
याद आती हैं
कुछ घटनाएँ
विश्व–पटल पर
बीत गई दुःस्वप्नों की तरह
जहाँ तबाही देखी गई
लाखों जिंदगियों की
उफनती बाढ़ में
बरसती आग में
और कुछ सांप्रदायिक उन्माद में
और अभिशाप के वे पल
प्रार्थना है
कि फिर न लौटें
मानव की ज़िंदगी में
बसेगा घर
फिर से
खिलेंगे फूल
फिर से
और महकेगी ज़िंदगी
खुशियों से
कामना है यही।।

अस्त–व्यस्त

व्यस्त होती दुनिया में
अब दिखने लगे हैं लोग
अस्त व्यस्त।
अपनी–अपनी मंजिलों की तलाश में
एक दूसरे से होते जा रहे दूर
चलते हुए थोड़ी दूर तक साथ
फिर बदलते रास्ते
कभी व्यस्त
कभी पस्त
कभी त्रस्त
होते हुए अभ्यस्त
इस टुकड़ा–टुकड़ा ज़िंदगी से
छोड़कर सोचना
सहजता के सूत्र
सहजता की कामना
साँस दर साँस
निपटाते हुए
ज़िंदगी की यंत्रवत चर्या
कहीं बची है फुर्सत
अन्य बातों के लिए
जीना और मरना तो अकेले ही है
बन गया नया संसार
बस कुछ देर
छू लेने के सरोकार
शेष बस एकाकीपन।।

ठहराव

मैं ठहरना नहीं चाहता
मंजिलें कहीं भी ठहरती नहीं है
जीवन भी ठहरता नहीं है
विचारों को लगाम देकर
ठहराव को न्योता नहीं देना
सपनों की फसल
उगती रहती है
और कटती रहती है
किंतु यह प्रक्रिया अनवरत है
हमारे ठहराव पर
राहें हमें छोड़ देती हैं
और मंजिलें गुम हो जाती हैं
इसलिए
हमें चलना ही होगा
ठहरना नहीं है हमें।

बस का सफर

अब भी याद आता है
वह बस का सफर
ठसाठस भरी हुई
सवारियों से
तेज रफ्तार
दौड़ती दिल्ली की सड़कों पर
देह से टकराती देह
किसी को पकड़ने की जरूरत नहीं
मिली जुली देह गंध से
पूर्णतया सुवासित
एक घंटे का सफर
अब भी याद आता है।।

ख़ामोशी

ख़ामोशियों की
आवाज बड़ी होती है,
आँख चुपचाप
और होंठ फड़फड़ाते हैं
कभी अचरज
कभी उलझन
कभी तनहाई में
राग दिल का
मुखर हो
दिल में ही
गाते हैं।

है कठिन
और मुश्किल
रहना यूँ शून्यता में
दिल के अफसाने
अचानक ही
उभर आते हैं
कभी भय से
कभी विस्मय से
कभी यादों से
गुजरे पल
फिर से
गुनगुनाते हैं।

आँधियाँ चलती हैं
साँसें भी सहम जाती है
ऐसे पल
फिर भी
ख़ामोशी से
गुजर जाते हैं।

❑❑

राजा खुगशाल की बाल कविताएँ

छुपम–छुपाई

काषी और किताबें रखीं
कर दी बंद पढ़ाई।
छुट्टी का दिन है, बच्चे
खेल रहे हैं छुपम–छुपाई।

चिंटू–पिंटू छिपे हुए हैं
दरवाजे के पीछे।
बबलू–बीनू ढूँढ़ रहे हैं
उनको टेबल के नीचे।
चुपके से बबलू ने
कमरे की ट्यूब जलाई।
चिंटू–पिंटू किचन में
झट से दिये दिखाई।

कमरे में आकर चिंटू ने
सबसे ताली बजवाई।
पिंटू बोला, अब छिपने की
बारी बबलू की आई।

शोर–शराबा सुन मम्मी ने
आँगन से डाँट लगाई।
बच्चों तुमने शोर किया तो
होगी अच्छी तरह पिटाई।

मेला

हाथी पर बैठे बच्चे
देखो, मेला घूम रहे हैं।
ढिम–ढिम बजते ढोल–नगाड़े
नाच रहे कुछ, झूम रहे हैं।

फिरकी पर फिरकीवाला
नागिन की धुन बजा रहा है।
और खिलौने वाला भी
नये खिलौने सजा रहा है।

तरह–तरह के खेल–खिलौने
मोटर पम–पम, चर्खी–झूला।
जादूगर यों लगता है ज्यों
बना हुआ हो दूल्हा।

बाजीगर ने डुग–डुग–डुग
बच्चों की भीड़ जुटाई।
धूम–धाम से बंदर की
बंदरी से शादी करवाई।

सरकस में शेरों ने भी
अपने करतब दिखलाए।
जोकर ने मटक–मटक कर
बच्चे खूब हँसाए।

बैठ गया है कुर्सी पर
चश्मा–टाई पहने भालू।
मालिक ने उसे खिलाए
हरे टमाटर, कच्चे आलू।

❑❑

डॉ. श्याम सखा की कविताएँ

साधारण की व्यथा

चुपचाप जो रहते हैं
वे भी तो कुछ कहते हैं
योगदान उनका क्या गौण है
फिर
उनके बारे में
इतिहास क्यों मौन है?

क्या
बस राधा थी?
जो
कृष्ण का आधा थी?

श्याम की
और भी तो रानियाँ हैं
उनकी
कहाँ कहानियाँ हैं?
और गोप–गोपियाँ कहाँ जाएँगी?
अपना अधिकार किससे पाएँगी?

बिन
गोप गोपियों
के रास रच जाती?
कान्हा तेरे
बचपन की कोई बात बच पाती?

जब स्थान
पूतना को भी
उचित मिल जाता है
तो अपना
साधारण होना मुझे खल हो जाता है।

अपना रंग जमाने की खातिर
कुब्जा को
भी ले आते हैं
ये
कैसे लेखक हैं
जन साधारण को
नहीं गाते हैं।

बस
विशेष शेष रह जाता है
साधारण
तो बनता है, अवशेष
ढह जाता है
समय की नद में बह जाता है।

मन्थरा
ताड़का, शूर्पनखा
सब कहीं न कहीं?
अलग होकर
देती दंश रही,
सीता
जन्मी धरा से
धरा में धँस रही।

यूँ कहने को रामायण
में शबरी भी आई है

पर इसी बहाने लेखक ने
फिर राम की महिमा गाई है।

अहिल्या का
पत्थर होना
आया लेखक को रास था
वरना
उर्मिला,
भरत संगिनी
शत्रुघन भार्या
और अनेकों के
बारे में
लिखने का
उनको कब अवकाश था।

जाम्बवन्त
दधीचि हो
या हो हिडिम्बा
चाहे हो
मल्लाह की बेटी
मत्सयगंधा
विशेषता
आवश्यक है
सुन अम्बालिका
सुन अम्बा

एकलव्य ने
साधारण होकर
सर ऊपर उठाया था
इसी एवज में
अपना अँगूठा कटवाया था

क्या इन्द्रप्रस्थ में
बस
द्रोपदी एक मात्र नारी थी?
जो पड़ी
सभी स्त्री पुरुषों पर भारी थी।

हत्भागिनी
आँसू पीकर
जीने वाली
दुर्योधन की पत्नी
का जिक्र कहाँ है?
आँसू पोंछे?
उसके इतिहास को फिक्र कहाँ है?

मैं भी
कहाँ सबके बारे में कह पाऊँगा
कहना
भी चाहूँगा
तो सुनने वाले कहाँ पाऊँगा?

अक्षर भी
जब तक
साधारण रहते हैं
पड़े रहते हैं
चुपचाप वर्णमाला में
जड़े रहते हैं।

सुघड़ लेखक
के हाथ आकर
कभी इसका
कभी उसका साथ पाकर
शब्द बनते हैं
इठलाते हैं।

फिर देकर
एक दूजे का लेकर सहारा
कहानी, कविता
गजल में ढल जाते हैं
सुन्दर अति सुन्दर कहलाते हैं।

❑❑

भारतीय पौराणिक कथाएँ एवं आधुनिक विज्ञान

डॉ.एस.एस. मुद्गिल

युवल हरारी एक प्रसिद्ध इजराइली इतिहासकार और लेखक हैं, जो अपनी पुस्तक 'सेपियंस' के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते हैं।

अपने लेखन में, हरारी मानव इतिहास, प्रौद्योगिकी, संस्कृति और भविष्य से संबंधित कई विषयों की खोज करते हैं, अक्सर मानव समाज को आकार देने में पौराणिक कथाओं की भूमिका को छूते हैं। युवल हरारी मानव सभ्यता के विकास में मिथकों के महत्व पर जोर देते हैं। अपनी पुस्तक 'सेपियंस' में, वे तर्क देते हैं कि पौराणिक कथाओं– साझा कहानियाँ, विश्वास और विचारधाराएँ जो लोगों के समूहों को एक साथ बाँधती हैं – ने मानव इतिहास में एक मौलिक भूमिका निभाई है, बड़े पैमाने पर सहयोग को सक्षम किया है और सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रणालियों को आगे बढ़ाया है।

युवल हरारी का पौराणिक कथाओं के बारे में मानना है कि यह मानव समाज के विकास को समझने के लिए केंद्रीय हैं। जबकि मिथक वैज्ञानिक अर्थों में ''सत्य'' नहीं हैं, वे मानव चेतना को आकार देने, सामूहिक व्यवहार का मार्गदर्शन करने और सामाजिक व्यवस्था के लिए एक रूपरेखा प्रदान करने में महत्वपूर्ण रहे हैं?

इस अर्थ में, पौराणिक कथाएँ न केवल अतीत की एक सांस्कृतिक कलाकृति हैं, बल्कि हम खुद को, दूसरों को और अपने आस–पास की दुनिया को कैसे देखते हैं, इस पर एक सतत् प्रभाव भी डालती हैं। हरारी द्वारा किया गया पौराणिक कथाओं का विश्लेषण, इसके कार्य को समझने में मदद करता है, न कि केवल साधारण दंतकथाओं या कहानियों के रूप में, बल्कि शक्तिशाली उपकरणों के रूप में, जिन्होंने मानव इतिहास को आकार दिया है और आधुनिक विश्व को प्रभावित करना जारी रखा है।

आइये कुछ पौराणिक कथाओं एवं आधुनिक विज्ञान में साक्ष्य देखें–

डार्विन की डेवलपमेंट थ्योरी के अनुसारः समुद्री जीव से लेकर सरीसृप (reptiles) और फिर मानव तक का कार्मिक विकास (evolution) एक लंबी प्रक्रिया है, जो करोड़ों वर्षों में हुई। यह प्रक्रिया विभिन्न जैविक और पर्यावरणीय परिवर्तनों से प्रेरित थी। आइए इसे संक्षेप में समझते हैं।

1. समुद्री जीवन की उत्पत्ति (लगभग 3.8 अरब साल पहले) प्रकाश–संश्लेषणः लगभग 3 अरब साल पहले सायनोबैक्टीरिया ने प्रकाश–संश्लेषण की प्रक्रिया विकसित की, जिससे ऑक्सीजन का निर्माण हुआ। यह पृथ्वी के वातावरण को बदलने का पहला कदम था।

प्रथम जीवनः पृथ्वी के महासागरों में सबसे पहले सूक्ष्मजीव (prokaryotes) विकसित हुए, जैसे बैक्टीरिया।

जटिल जीवन का विकास (लगभग 2 अरब साल पहले)

बहुकोशिकीय जीवनः कोशिकाओं ने आपस में जुड़कर जटिल बहुकोशिकीय जीव बनाए। पहले **समुद्री जीवः** जेलीफिश और समुद्री स्पंज जैसे सरल जीव महासागरों में विकसित हुए।

कैंब्रियन विस्फोट (लगभग 54 करोड़ साल पहले)ः पहले कशेरुकी जीव (vertebrates), जैसे मछलियाँ, विकसित हुईं।

–जल से भूमि पर जीवन का आगमन (लगभग 37.5 करोड़ साल पहले)ः कुछ मछलियों, जैसे टिकटालिक, ने पैर और फेफड़े विकसित किए, जिससे वे उथले पानी और भूमि पर चलने में सक्षम हुईं।

ये जीव धीरे–धीरे उभयचर (amphibians) बने, जो पानी और जमीन दोनों पर रहते थे।

सरीसृपों का विकास (लगभग 31 करोड़ साल पहले)ः उभयचरों से सरीसृप (reptiles) विकसित हुए, जिन्होंने शुष्क जमीन पर रहना शुरू किया।

सरीसृपों ने कठोर अंडों और शुष्क त्वचा जैसे गुण विकसित किए, जिससे वे पूरी तरह भूमि पर स्वतंत्र हो गए।

स्तनधारियों का उदय (लगभग 20 करोड़ साल पहले)ः

- सरीसृपों से ही प्रारंभिक स्तनधारी (mammals) विकसित हुए।
- ये छोटे और रात्रिचर जीव थे, जिन्होंने शरीर में गर्मी बनाए रखने और अपने बच्चों को दूध पिलाने की क्षमता विकसित की।

लगभग 6.5 करोड़ साल पहले एक विशाल उल्कापिंड के कारण डायनासोर विलुप्त हो गए। इसके बाद स्तनधारियों ने तेजी से विविधता प्राप्त की और नए पर्यावरणों में फैल गए। उन्होंने पेड़ों पर चढ़ने के लिए पकड़ने वाले हाथ, दृष्टि और बड़े मस्तिष्क जैसे गुण विकसित किए।

बंदरों से अलग होकर होमिनिन्स (hominins) **विकसित हुए।**

होमो इरेक्टस–द्विपादता (bipedalism): होमिनिन्स ने दो पैरों पर चलना शुरू किया।

आधुनिक मानव का विकास लगभग 3 लाख साल पहले आधुनिक मानव अफ्रीका में विकसित हुए।

समुद्री जीवन से मानव तक का विकास प्रकृति और पर्यावरण के साथ निरंतर अनुकूलन और बदलाव का परिणाम है। यह यात्रा हमें दिखाती है कि कैसे सूक्ष्म जीवों से लेकर बुद्धिमान मानव तक, जीवन ने विविधता और जटिलता को अपनाया।

पौराणिक कथाओं में मानव विकास कथा अवतारों के माध्यम से भगवान विष्णु के 'दशावतार (दस अवतार)' से मत्स्य (मछली), कूर्म (कछुआ), 'वराह (सूअर)' और 'नरसिंह (आधा मनुष्य, आधा सिंह)' के भारतीय मिथकों को जीवन रूपों की प्रगति के एक रूपकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में देखा जा सकता है जो डार्विन के 'विकास के सिद्धांत' के साथ दिलचस्प रूप से मेल खाता है। हालाँकि मिथकों का उद्देश्य वैज्ञानिक विवरण नहीं था, लेकिन वे आधुनिक विकासवादी सिद्धांत के माध्यम से समझे गए जैविक विकास के चरणों को रूपक रूप से दर्शाते हैं।

यहाँ बताया गया है कि सादृश्य कैसे काम करता हैः

1. मत्स्य (मछली) अवतार– जलीय जीवन

मिथकः विष्णु वेदों को बचाने और एक महान बाढ़ के दौरान दुनिया की रक्षा करने के लिए एक मछली का रूप लेते हैं। मत्स्य दशावतार में पहले अवतार का प्रतिनिधित्व करता है।

डार्विनियन सादृश्यः यह पानी में विकसित होने वाले जीवन के शुरुआती चरणों से मेल खाता है। डार्विन के सिद्धांत के अनुसार, जीवन की शुरुआत जलीय वातावरण में हुई थी और पहले जीव मछली जैसे थे।

2. कूर्म (कछुआ) अवतार – उभयचर/सरीसृप में परिवर्तनः

मिथकः अपने दूसरे अवतार में, विष्णु समुद्र मंथन के दौरान मंदरा पर्वत को सहारा देने के लिए कछुआ बन जाते हैं। कछुआ एक उभयचर प्राणी है, जो पानी और जमीन दोनों पर रहने में सक्षम है।

डार्विनियन सादृश्यः यह पानी से जमीन पर विकासवादी संक्रमण को दर्शाता है। शुरुआती उभयचर और सरीसृप जलीय पूर्वजों से विकसित हुए, जो स्थलीय आवासों के अनुकूलन का प्रतीक है।

3. वराह (सूअर) अवतार – स्थलीय स्तनधारी–

'मिथकः' वराह अवतार में, विष्णु पृथ्वी (भूदेवी के रूप में मानवीकृत) को ब्रह्मांडीय महासागर की गहराई से बचाने के लिए एक सूअर का रूप लेते हैं।

डार्विनियन सादृश्यः सूअर भूमि पर रहने वाले स्तनधारियों के उदय का प्रतिनिधित्व करता है। यह चरण पूरी तरह से भूमि पर जीवन के लिए अनुकूलित जानवरों के विकास को दर्शाता है, जिसमें वराह स्थलीय प्रजातियों के उद्भव का प्रतीक है।

नरसिंह (आधा मनुष्य, आधा शेर)–संक्रमणकालीन रूप–

मिथकः नरसिंह अवतार में, विष्णु आधे मनुष्य और आधे शेर हैं, जिन्होंने राक्षस हिरण्यकश्यप को हराने के लिए अवतार लिया था। नरसिंह एक ऐसे रूप का प्रतीक हैं जो न तो पूरी तरह से मानव है और न ही पूरी तरह से पशु।

डार्विनियन सादृश्यः इसकी तुलना विकास में संक्रमणकालीन रूपों से की जा सकती है, जैसे कि ऐसी प्रजातियाँ जो अपने पूर्वजों और वंशजों दोनों समूहों के लक्षण प्रदर्शित करती हैं। यह जानवरों और शुरुआती होमिनिड्स के बीच विकासवादी पुल का प्रतीक हैं।

सादृश्य से मुख्य निष्कर्षः

1. जीवन का विकासः विष्णु के अवतारों का क्रम रूपक रूप से जलीय से स्थलीय रूपों तक जीवन के विकासवादी विकास को दर्शाता है, जो अधिक उन्नत जीवों में परिणत होता है।

2. अनुकूलन और विविधताः प्रत्येक अवतार एक विशिष्ट वातावरण के लिए अनुकूलन को दर्शाता है, ठीक उसी तरह जैसे प्रजातियाँ अपने परिवेश के अनुकूल लक्षण विकसित करती हैं।

3. परिवर्तन का प्रतीकवादः जिस तरह डार्विन का सिद्धांत समय के साथ प्रजातियों के क्रमिक परिवर्तन का वर्णन करता है, उसी तरह दशावतार दैवीय कथा में परिवर्तन और विकास को दर्शाता है।

व्यापक निहितार्थः

1. प्रारंभिक विज्ञान के रूप में सांस्कृतिक आख्यानः भारतीय मिथक, आध्यात्मिक

और प्रतीकात्मक होते हुए भी, अक्सर ऐसी अंतर्दृष्टि रखते हैं जो रूपक के रूप में देखने पर आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों के साथ संरेखित होती हैं।

2. विकासवादी विचार की सार्वभौमिकताः दशावतार जीवन की विविधता और प्रगति के बारे में सार्वभौमिक जागरूकता को रेखांकित करता है, यहाँ तक कि प्राचीन परंपराओं में भी।

हालाँकि यह सादृश्य व्याख्यात्मक है और शाब्दिक नहीं है, यह भारतीय पौराणिक कथाओं की गहराई और आधुनिक वैज्ञानिक विचारों के साथ प्रतिध्वनित होने की इसकी क्षमता को उजागर करता है।

2. एक अन्य उदहारण देखें– सांख्यदर्शन के प्रकृति और पुरुष सिद्धांत एवं बच्चे के जन्म के बीच समानताः सांख्य दर्शन और बच्चे के जन्म के बीच समानता पुरुष (चेतना) और प्रकृति (आदिम पदार्थ) के परस्पर क्रिया में निहित है, जो जीवन के निर्माण में पिता और माता की भूमिकाओं के समान है। तुलना इस प्रकार हैः

1. पिता के रूप में पुरुषः सांख्य में, पुरुष निष्क्रिय पर्यवेक्षक, चेतना और ऊर्जा का स्रोत है। इसी तरह बच्चे के जन्म में, पिता बीज का योगदान देता है, जो क्षमता रखता है लेकिन माँ के पोषण वाले वातावरण के बिना सक्रिय रूप से जीवन का निर्माण नहीं करता है।

2. माँ के रूप में प्रकृतिः माँ की तरह प्रकृति भी सक्रिय, रचनात्मक सिद्धांत है। इसमें जीवन को प्रकट करने की अंतर्निहित क्षमता होती है और यह पुरुष द्वारा प्रदान किए गए बीज का पोषण करती है। बच्चे के जन्म में, माँ का शरीर रूपांतरित होता है, भ्रूण का पोषण करता है और जन्म देता है, ठीक उसी तरह जैसे प्रकृति भौतिक ब्रह्मांड में विकसित होती है।

3. मिलन और सृजनः सांख्य में पुरुष और प्रकृति की परस्पर क्रिया से ब्रह्मांड का निर्माण होता है, ठीक वैसे ही जैसे पिता और माता के मिलन से बच्चे का जन्म होता है। पुरुष और प्रकृति के गुण मिलकर बच्चे में प्रकट होते हैं, जो चेतना और पदार्थ के मिश्रण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

4. क्षमता और अभिव्यक्तिः गर्भाधान से पहले, जीवन की क्षमता माता–पिता दोनों में मौजूद होती है, ठीक वैसे ही जैसे प्रकृति में भौतिक ब्रह्मांड की क्षमता मौजूद होती है। प्रकृति यानी कृति से पहले की स्थिति त्रिगुणात्मक होती है सत्व, रज और तमस गुण समान अवस्था [equlibrium] में होते हैं सांख्य दर्शन के अनुसार जब इन गुणों का [equlibrium] बिगड़ता है तो पुरुष (दैवीय ऊर्जा) उसकी तरफ आकर्षित हो जाती है और तब उनके मिलन से ब्रह्मांड की उत्पत्ति आरम्भ होती है पहले महत्त यानी बुद्धि फिर अहंकार [I can do] मैं कर सकता हूँ, ठीक इसी तरह अगर स्तनधारी का उदाहरण लें जब मादा heat में आती है तो नर उसकी तरफ आकर्षित हो जाता है और जब दोनों मिलते हैं, तो यह क्षमता वास्तविक हो जाती है, और मिलन से बच्चे पैदा होते हैं।

5. परिवर्तनः सांख्य में जैसे पुरुष प्रकृति मिलन से पहले महत्त यानी बुद्धि फिर अहंकार [I can do मैं कर सकता हूँ] वैसे नर मादा के मिलन से मादा में बच्चे के जन्म के दौरान, माँ के शरीर में नए जीवन के निर्माण का समर्थन करने के लिए महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इसी तरह, प्रकृति ब्रह्मांड

के विविध रूपों को सामने लाने के लिए परिवर्तनों (तीन गुणोंः सत्व, रजस और तम के संशोधन) से गुजरती है।

दोनों ही उपमाओं में सृष्टि का सार दो पूरक शक्तियों का परस्पर क्रिया है— सांख्य में पुरुष और प्रकृति, तथा प्रसव में पिता और माता— प्रत्येक जीवन या भौतिक संसार को जन्म देने में एक महत्त्वपूर्ण, परस्पर जुड़ी भूमिका निभाते हैं।

सांख्य दर्शन बताता है कि ब्रह्मांड प्रकृति और पुरुष के मिलन से पैदा हुआ है। प्रकृति मूलभूत ब्रह्मांडीय पदार्थ है, जो सभी सृष्टि का मूल है, जबकि पुरुष आत्मा या चेतन ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है जो जीवन और वास्तविकता को नियंत्रित करता है। समय और स्थान से परे विद्यमान पुरुष प्रकृति के साथ मिलकर उस संसार का निर्माण करता है जिसे हम अनुभव करते हैं। ये दो शाश्वत और अविनाशी सिद्धांत मिलकर पदार्थ को जन्म देते हैं। प्रकृति पुरुष के जवाब में विकसित होती है, आंतरिक परिवर्तनों से गुजरती है जो अंततः पंच महाभूतों या पाँच महान् तत्वों के निर्माण की ओर ले जाती हैः

आकाश (ईथर या अंतरिक्ष), वायु (प्राण या हवा), अग्नि (गर्मी या आग), जल (पानी), पृथ्वी (पृथ्वी या मिट्टी) दिलचस्प बात यह है कि चीनी दर्शन में भी इसी तरह का द्वंद्व पाया जाता है, जहाँ **यिन स्त्री, अंधेरे और नकारात्मक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, और यांग मर्दाना, उज्ज्वल और सकारात्मक शक्ति का प्रतीक है।** उनकी परस्पर क्रिया जीवों की नियति को आकार देती है। सांख्य के पुरुष–प्रकृति और चीन के यिन–यांग के बीच यह समानता सवाल उठाती हैः क्या यह सिर्फ एक संयोग है?

यह अवधारणा स्तनधारियों में जैविक प्रक्रियाओं के साथ भी संरेखित होती है। उदाहरण के लिए, प्रजनन चक्र के दौरानः महिला के शरीर में परिवर्तन होते हैं, जैसे कि गर्भाशय की परत का मोटा होना (प्रकृति की गतिशील प्रकृति के समान)।

जब मादा कामोत्तेजना के चरण में पहुँचती है, तो वह संभोग के लिए ग्रहणशील हो जाती है। यह तीन गुणोंः रजस (गतिशीलता), तमस (जड़ता) और सत्व (सामंजस्य) के असंतुलन के कारण प्रकृति की जीवंत अवस्था से मेल खाता है। इस बीच, पुरुष में शुक्राणु निष्क्रिय रहते हैं, ठीक वैसे ही जैसे पुरुष की निष्क्रिय और स्थिर प्रकृति होती है। जब पुरुष कामोत्तेजना के दौरान मादा द्वारा स्त्रावित फेरोमोन को महसूस करता है, तो यह संभोग व्यवहार को सक्रिय करता है, जो पुरुष और प्रकृति के बीच की बातचीत को दर्शाता है।

यह जैविक सादृश्य पुरुष और प्रकृति के बीच की ब्रह्मांडीय परस्पर क्रिया को सांख्य में दर्शाता है, जो ब्रह्मांडीय दर्शन और प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परस्पर संबंध पर जोर देता है। इन पूरक शक्तियों की परस्पर क्रिया— चाहे वह दर्शन, प्रकृति या जीव विज्ञान में हो— सृजन और उत्थान की ओर ले जाती है।

❑❑

क्या भारतीय संविधान के पुनर्लेखन की आवश्यकता है?: एक विस्तृत विश्लेषण

डॉ. संजीव कुमार

भारतीय संविधान, जो 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ था, स्वतंत्र भारत की नींव का प्रमुख आधार है। यह दस्तावेज भारतीय समाज की विविधता, लोकतांत्रिक मूल्यों और कानूनी संरचना का प्रतिबिंब है। लेकिन समय के साथ, यह प्रश्न उठता है कि क्या वर्तमान संविधान भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों को पूरी तरह से संभालने में सक्षम है? आइए, इस विषय को विस्तार से समझते हैं।

पुनर्लेखन के पक्ष में तर्क (Arguments in Favor of Rewriting the Constitution)

1. **समाज में बदलते परिवेश और समय की माँग:**
   - भारतीय समाज 1950 के बाद से काफी बदल चुका है। सूचना प्रौद्योगिकी, वैश्वीकरण, पर्यावरणीय संकट और महिलाओं व हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकार जैसे मुद्दे आज अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। इन आधुनिक समस्याओं को संविधान में अधिक स्पष्टता और प्रभावी ढंग से शामिल करने की आवश्यकता हो सकती है।
2. **कानूनी अस्पष्टता और सुधार की आवश्यकता:**
   - भारतीय संविधान के कुछ प्रावधान अस्पष्ट हैं, जिनके कारण न्यायपालिका में बार–बार उनकी व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता) के तहत कई व्याख्याएँ की गई हैं। एक पुनर्लेखन से इन प्रावधानों को अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।
3. **संशोधनों की बहुलता:**
   - संविधान को अब तक 105 बार संशोधित किया जा चुका है, जो यह दर्शाता है कि इसे समय के साथ बदलने की आवश्यकता पड़ी। इतने संशोधनों के बावजूद, कई क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें अभी भी व्यापक सुधार की जरूरत है। उदाहरण के लिए, समान नागरिक संहिता, पुलिस सुधार और न्यायिक जवाबदेही।
4. **राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार:**
   - भारतीय लोकतंत्र को और अधिक पारदर्शी और प्रभावी बनाने के लिए संविधान में राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार लाने की आवश्यकता है। यह चुनाव सुधार, राजनीतिक दलों की जवाबदेही, और केंद्र–राज्य संबंधों के पुनः मूल्यांकन जैसे क्षेत्रों में मददगार हो सकता है।

5. **समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code):**

- भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष देश में समान नागरिक संहिता लागू करने का मुद्दा संविधान का एक जटिल पहलू है। वर्तमान में, विभिन्न धर्मों के लिए अलग–अलग व्यक्तिगत कानून हैं। पुनर्लेखन से इन कानूनों को समान नागरिक संहिता के माध्यम से एकीकृत किया जा सकता है।

6. **सरकारी संस्थानों की जवाबदेही:**

- सरकारी संस्थानों की जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए संविधान में स्पष्ट प्रावधान जोड़े जा सकते हैं। जैसे, न्यायपालिका में जवाबदेही सुनिश्चित करना, भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कड़े उपाय लागू करना, और कार्यपालिका व विधायिका की सीमाएँ निर्धारित करना।

पुनर्लेखन के विपक्ष में तर्क (Arguments Against Rewriting the Constitution)

1. **संविधान की स्थिरता और स्वीकार्यता:**

- भारतीय संविधान को इसकी स्थिरता और व्यापक स्वीकार्यता के कारण विश्व के सबसे महान संविधानों में गिना जाता है। इसे पुनर्लेखित करने से इसकी स्थिरता और जनता का विश्वास कमजोर हो सकता है।

2. **संविधान का लचीलापन (Fleuibility of the Constitution):**

- भारतीय संविधान लचीला है और इसमें संशोधन के प्रावधानों के माध्यम से बदलते समय के अनुसार आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं। अब तक के 105 संशोधन इस लचीलापन का प्रमाण हैं।

3. **मूल ढांचे की रक्षा (Protection of the Basic Structure Doctrine):**

- भारतीय संविधान का 'मूल ढांचा सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) भारतीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और संघीय ढांचे की नींव है। पुनर्लेखन की प्रक्रिया में इस मूल ढांचे के कमजोर होने की संभावना हो सकती है।

4. **राजनीतिक अस्थिरता का जोखिम:**

- संविधान के पुनर्लेखन की प्रक्रिया विभिन्न राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष का कारण बन सकती है। यह देश की एकता और अखंडता को खतरे में डाल सकता है।

5. **इतिहास और अनुभव का महत्व:**

- भारतीय संविधान स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय परंपराओं और सामाजिक संरचना के अनुभवों का परिणाम है। इसे पुनर्लेखित करना उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का अनादर हो सकता है।

6. **महंगा और जटिल प्रक्रियाः**

- संविधान का पुनर्लेखन एक महंगा और जटिल कार्य है। इसे लिखने में कई वर्षों का समय लग सकता है और व्यापक सहमति प्राप्त करना अत्यधिक कठिन होगा।

संभावित समाधान और सुधार (Potential Solutions and Reforms)

1. **संविधान के सुधारात्मक संशोधन (Amendments Instead of Rewriting):**
   - संविधान के पुनर्लेखन के बजाय, उन प्रावधानों में सुधार करना जो समय के साथ अप्रासंगिक हो गए हैं या आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते।

2. **जन संवाद और विशेषज्ञ भागीदारी (Public Consultation and Expert Involvement):**
   - किसी भी सुधार या पुनर्लेखन से पहले, व्यापक जन संवाद और विशेषज्ञों की भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है ताकि सभी वर्गों के विचारों का प्रतिनिधित्व हो सके।

3. **प्रौद्योगिकी और वैश्विक मुद्दों को शामिल करनाः**
   - सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यावरणीय संकट, और वैश्विक चुनौतियों को संबोधित करने के लिए संविधान में नए प्रावधान जोड़े जा सकते हैं।

4. **शिक्षा और जागरूकताः**
   - संविधान के प्रावधानों के बारे में लोगों को शिक्षित करना और उनकी नागरिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता बढ़ाना, संविधान के प्रभावी कार्यान्वयन में मदद कर सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय संविधान, अपने वर्तमान स्वरूप में, एक गतिशील और लचीला दस्तावेज है, जो समय के साथ बदलते समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है। हालांकि, इसमें सुधार की आवश्यकता है, लेकिन इसे पूरी तरह से पुनर्लेखित करना एक संवेदनशील और जटिल प्रक्रिया होगी।

पुनर्लेखन की जगह संविधान में संशोधन और सुधारात्मक उपाय करना अधिक व्यावहारिक और सुरक्षित विकल्प है। ऐसे सुधार संविधान के मूल ढांचे को बनाए रखते हुए समकालीन चुनौतियों का सामना करने में मदद करेंगे। संविधान की स्थिरता और इसकी ऐतिहासिक महत्वता को ध्यान में रखते हुए, इस पर कोई भी निर्णय व्यापक विचार–विमर्श और सहमति के बाद ही लिया जाना चाहिए।

"भारतीय संविधान केवल एक दस्तावेज नहीं है, यह भारत की आत्मा है। इसे सम्मान और संवेदनशीलता के साथ संभालना चाहिए।"

❑❑

साहित्य समाचार

रंगकर्मी आलोक शुक्ला के नये नाट्य संग्रह का NSD में हुआ लोकार्पण

जाने–माने रंगकर्मी आलोक शुक्ला के नये नाट्य संग्रह अजीब दास्तां का भव्य लोकार्पण 4 फरवरी को शाम 5 बजे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली के परिसर में भारत रंग महोत्सव के अंतर्गत श्रुति कार्यक्रम में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के डायरेक्टर और प्रसिद्ध अभिनेता चितरंजन त्रिपाठी, प्रसिद्ध रंग समीक्षक संगम पाण्डेय और NSD के प्रकाशन प्रमुख डॉक्टर प्रकाश झा के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

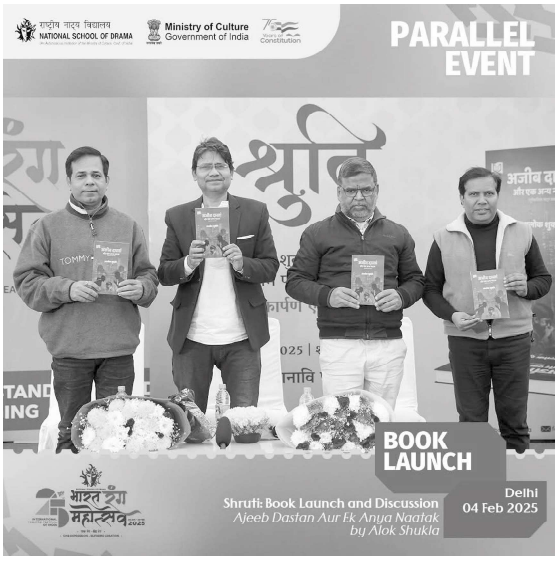

इस मौके पर नाट्य संग्रह पर चर्चा करते हुए प्रसिद्ध रंग समीक्षक संगम पाण्डेय ने आलोक शुक्ला की गंभीर बीमारी से उबरने के क्रम में उनके नाट्य लेखन और रंगकर्म की प्रशंसा करते हुए अजीब दास्तां को आज के जमाने का 'आधे–अधूरे' करार दिया और कहा कि आधे अधूरे में सब किसी चीज की तलाश में रहते हैं तो अजीब दास्तां में सब कुछ होते हुए भी लोग टूटे हुए हैं। जिस पर आलोक ने सभी का आभार व्यक्त करते हुए बताया कि ये नाटक महानगर मुंबई के दो ऐसे परिवारों के दाम्पत्य जीवन के टूटते–बिगड़ते रिश्तों पर है जबकि दूसरा नाटक एक हास्य नाटक है।

बता दें कि आलोक शुक्ला बीते चार साल से जीबीएस पैरलीसिस से पीड़ित है और अभी भी पूरी तरह से ठीक नहीं हुए हैं लेकिन इसी दौरान उन्होंने अपने नाट्य लेखन को जारी रखा और उनके तीन नाट्य संग्रह, एक रंग संस्मरण और एक काव्य संग्रह प्रकाशित होकर आये, इसी के साथ पिछले साल मंच पर भी अपने लिखे नाटकों का निर्देशन और अभिनय करते हुए उन्होंने वापसी की।

लोकार्पण के दौरान विशेष रूप से प्रयाग शुक्ल, राजेश कुमार, हेमंत मिश्रा, शिवकेश मिश्रा, महेन्द्र प्रसाद सिंह, सुनील रावत, प्रताप सिंह, नीतू शुक्ला, अर्जुन राजपूत समेत कई रंगकर्मी और लेखक उपस्थित रहे। इस नाट्य संग्रह को इंडिया नेटबुक्स वेबसाइट एमाज़ॉन और फ्लिपकार्ट से प्राप्त किया जा सकता है।

❑❑

साहित्य और अनुवाद की मेरी व्यायामशाला

प्रेम जनमेजय

संबंधों को लेकर साहित्य की दुनिया में दो प्रकार की सोच के जीव विचरण करते हैं– गोदानंद और मुक्तानंद। गोदानंद ऐसे जीवों से संबंध रचते हैं जो दुधारु गाय जैसे होते हैं। शेयर बाजार में वणिक बुद्धि वाले जिस प्रकार इन्वेस्ट करते हैं वैसे ही ये संबंधों के लालन–पालन में इन्वेस्टमेंट करते हैं। वे इन दुधारु गायों को सबकी नजरों से बचाकर अपने बाड़े में रखते हैं। उन्हें अनपेक्षित उपहारों से लादते हैं। जैसे माँ अपने अमूल्य 'लाल' को अपना सिद्ध करने के लिए, गोद भरे विचरती है और जमाने की नजरों से बचाती है वैसे ही गौदुधारी इन्हें अपने सेफ में सेफ रखने का प्रयत्न करते हैं। प्रतिदिन फोन द्वारा गोदानंद जी अपनी मासूम गायों के कान में एक ही मंत्र फूँकते हैं– इस ललचाऊ संसार में गोदांनद के अतिरिक्त सब कसाई हैं। गोदानंद जी सपने में भी शतरंज खेलते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि नींद रात भर नहीं आती। उधर मुक्तानंद जी को न बाड़ा बनाने की आवश्यकता पड़ती है और न ही लालन–पालन पर अतिरिक्त व्यय करने की, क्योंकि मुक्तानंद जी संबंधों को जीते हैं उनका व्यापार नहीं करते। वे एक को दूसरे से मिलाते हैं और दूसरे को तीसरे से। वे वसुधैव कुटुंब की बात ही नहीं करते हैं, उसका निर्माण करते हैं। उनका लक्ष्य रहता है कि सब मिलजुल कर एक दूसरे के सहायक बनें। इस सोच के साथ मुक्तानंद जी सुख की नींद सोते हैं। ये दीगर बात है कि संबंधों का यूज एंड थ्रो शैली में प्रयोग करने वाले कुछ जीव मुक्तानंद जी नींदें उड़ाने की कोशिशें करते रहते हैं।

बलराम मुक्तानंद टाइप जीव हैं जो संबंधों की शृंखला का निर्माण करने में विश्वास करते हैं। उनकी इस सोच के कारण मैं दामोदर खड़से के साथ ऐसे मैत्री संबंध स्थापित कर पाया जो आज भी धीमी आँच पर पक रहे हैं। मैं दामोदर खड़से के रचनाकर्म से परिचित था और प्रभावित हो रहा था। उन्हें मैं एक अनुवादक और ऐसे बैंककर्मी के रूप में जानता था जिन्होंने बैंकिंग एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण जैसा महत्वपूर्ण कार्य किया है। अनेक बार आपका महत्वपूर्ण कार्य और उसकी छवि, आपके अन्य महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यों को नेपथ्य में ले जाती है। पर जब आपको उस व्यक्तित्व के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को जानने का अवसर मिलता है तो आपको अपनी अल्पज्ञता पर क्रोध आता है। मैं बलराम का शुक्रगुजार हूँ कि उसने ये सुअवसर दिया। बलराम का दामोदर खड़से के बारे में कहना है, ''हिंदी और मराठी में समान अधिकार से कलम चलाने वाले कथाकार दामोदर खड़से को समकालीन साहित्य परिदृश्य में प्रभाकर माचवे की तरह देखा जाता है। ... हिंदी के साथ मराठी भाषा उनके जीवन में कुछ इस कदर रच–बस गई कि वे हिंदी कथाकार–कवि के रूप में तो स्थापित हुए ही, दर्जन भर मराठी कृतियों के हिंदी अनुवाद से दो भारतीय भाषाओं के बीच सेतु भी बन गए।'' इस अंक में दामोदर खड़से ने

अपने कथाकार के आरंभिक दिनों को याद करते हुए लिखा है, ''कमलेश्वर की 'सारिका' में मेरी कहानियाँ आने लगीं। 'समांतर लेखक सम्मेलन' में भागीदारी होने लगी। सामाजिक सरोकारों की कहानियाँ–चर्चाओं की प्रतिध्वनियाँ इन सम्मेलनों में खूब उठीं–राजनीतिक–सामाजिक ऊहापोह, मत–मतांतर और विमर्शों से सम्मेलन सार्थक और सक्रिय हो उठता। इन्हीं सम्मेलनों में बलराम, संतोष तिवारी, सूर्यकांत नागर, जितेंद्र भाटिया, दया पवार, बाबूराव बागुल जैसे कथाकारों से मुलाकात हुई। फिर दया पवार की 'अछूत' नामक आत्मकथा के अनुवाद का सिलसिला शुरू हुआ, जो दलित साहित्य की बुनियादी पुस्तक सिद्ध हुई। मेरे अनुवाद–कार्य का प्रारंभ इसी पुस्तक से हुआ।''

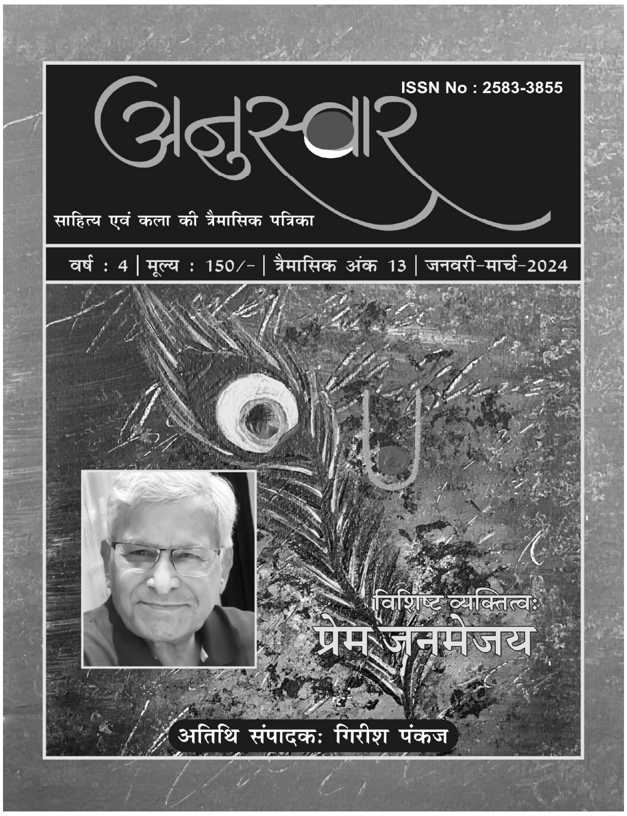

बलराम के कारण मैं उनके इन रूपों से परिचित हो पाया। शायद 2019 की बात है जब बलराम ने मुझे दामोदर खड़से का उपन्यास 'खिड़कियाँ' पढ़ने को दिया था। 'खिड़कियाँ' अकेलेपन से जूझने की कथा कहती है। उपन्यास के इस मूल ने मुझे बहुत प्रभावित किया था– ''समय दुनिया के हर दुख को सहने और भूलने का सहारा बन जाता है। एक दुख के सामने वह दूसरी चुनौती रख देता है। मनुष्य अपने अतीत को ढोकर बहुत आगे नहीं जा सकता। उसे अपने भविष्य के लिए वर्तमान गढ़ने होते हैं।'' यथार्थ केंद्रित इस निष्कर्ष को मैंने दो बरस बाद ही कोरोनाकाल में सही होते देखा था।

बलराम ने 'खिड़कियाँ' देकर दामोदर खड़से के कथाकार पक्ष के कुछ पल्ले खोलने आरंभ कर दिये तो 2021 में दामोदर खड़से ने अपने सद्य प्रक. ाशित उपन्यास 'बादल राग' सप्रेम भेंटकर मुझे उनके विभिन्न साहित्यिक रागों से परिचय का द्वार खोला। वे 'व्यंग्य यात्रा' से भी जुड़े। उन्होंने मुझे घनश्याम अग्रवाल के व्यंग्य कृति 'मिक्स वैजीटेबल' की समीक्षा भी भेजी जिसे मैंने पत्रिका में प्रकाशित भी किया।

कभी विवेकानंद ने कहा था, ''एक पुस्तकालय महान व्यायामशाला है, जहाँ हम अपने मन को सशक्त बनाने के लिए जाते हैं।'' अपने अनुभव के आधार पर मैं कह रहा हूँ कि दामोदर खड़से धीरे–धीरे मेरे लिए ऐसी ही महान व्यायामशाला बने हैं।

'बादल राग' पर मैंने एक बड़ा आलेख लिखा था जो 'अनुस्वार' के इस अंक में भी पढ़ने को मिल जाएगा। दामोदर खड़से का लेखन सामाजिक सरोकारों से जुड़े साहित्य का प्रतिबिंब है। इस उपन्यास का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। 'बादल राग' जैसी रचना ही तो शस्य अपार का कारण बनती है। ऐसी रचनाओं को ही तो चाहे बड़ी–बड़ी अट्टालिकाओं पर बैठे आलोचक अपनी लुच्चाई में पीठ दें पर पाठक इन्हें बुलाते हैं

एवं पाठकों की यही शक्ति आलोचकों पर विप्लव बनती है।

दामोदर खड़से ने इस अंक में आत्मकथ्य के अंतर्गत अनुभव जगत, लेखकीय दृष्टि, सरोकारों और प्रतिबद्धता को लेकर अपनी बात कही है। वे लिखते हैं,'' अभाव और चुनौतियाँ सबसे बड़े गुरु हैं। इन दोनों को जितने करीब से देखा जाए और उपलब्ध विकल्पों और संभावनाओं पर केंद्रित हम हो सकें, समाधान उसी अनुपात में मिल सकता है। बस, फिसलने और भटकने के प्रति सावधानी जरूरी होती है। कई बार अभाव ही सँभाल लेते हैं। ...जीवन ने जो सिखाया, कलम ने अपनाया। कलम ने कई संघर्षों से उबारा। कई संघर्षों में साथ दिया। कलम से बहुत बड़े परिवर्तनों का झंडा लहराने की बात कभी नहीं लगी। परंतु, अपने भीतर कई परिवर्तन मैंने अवश्य अनुभव किए। कलम को थामकर जीवन की लंबी रस्सी पर संतुलन साधने की कोशिश जरूर हुई। ... मेरी रचना–प्रक्रिया को मैं बहुत सहज पाता हूँ। विषय सामाजिक हो या कोई अन्य, एक लंबे समय तक मथता रहता है।''

इस अंक में उनके कथाकार रूप को ही नहीं, अनुवादक रूप को भी रेखांकित किया गया है। उनके इस पक्ष पर डॉ. सुनील केशव देवधर का आलेख है जिसमें वे लिखते हैं, ''एक अनुवाद के रूप में डॉ. खड़से ने हिन्दी और मराठी के बीच जिस संवाद की स्थापना की उससे न केवल हिन्दी का पाठक समृद्ध हुआ बल्कि मराठी का लेखक, रचनाकार भी विस्तृत फलक पर जाना गया। मराठी से लगभग 25 रचनाओं का हिन्दी अनुवाद उन्होंने किया है। यहाँ उनमें से कुछ का उल्लेख इसलिए भी आवश्यक है, ताकि शब्दों की आवाजाही बनी रहे, हिन्दी की जमीन पर मराठी का भाव और विचार सर सब्ज होता रहे। डॉ. खड़से ने दया पवार की कृति 'बलूत' का हिन्दी अनुवाद 'अछूत' नाम से किया। रामनगरकर के 'रामनगरी' का इसी नाम से, लक्ष्मण माने की आत्मकथा 'उपरा' का 'पराया' नाम से, अरुण खेरे की आत्मकथा 'पोरके सिवम' का अनुवाद 'भूले–बिसरे दिन' शरण कुमार लिम्बाके के उपन्यास 'झूंड' का अनुवाद और सदानन्द देशमुख के उपन्यास 'बारोमासा' का अनुवाद करने के साथ ही डॉ. अनिल देशमुख की आत्मकथा मन–सर्जन का भी आपने हिन्दी में अनुवाद किया।''

दामोदर खड़से के अनुवादक रूप का मुझे भी लाभ मिला। मेरी कुछ रचनाओं का मराठी में अनुवाद प्रसिद्ध अनुवादक विजय तरवड़े ने किया था। दामोदर खड़से ने न केवल इसका प्रकाशन मधुश्री प्रकाशन से संभव किया अपितु मेरे व्यंग्य लेखन को रेखांकित करते हुए गुणवत्तापूर्ण भूमिका भी लिखी।

'अनुस्वार' के प्रधान संपादक संजीव कुमार अपने दोस्तों को लेकर स्वयं को विशेषाधिकार संपन्न जीव मानते हैं। अनेक निर्णय अधिकारपूर्वक लेते हैं और आदेश पारित करते हैं कि ऐसा करना है। इस अंक का अतिथि संपादन मेरे लिए एक ऐसा ही आदेश था। ये दीगर बात है कि इस आदेश ने मुझे अधिक नहीं फंसाया। एक प्रधान संपादक की भूमिका निभाते हुए आवश्यक सामग्री जुटाई। उन्होंने ढेर–सा श्रम किया है पर ढेर–सा फल मुझ अतिथि को मिलने वाला है। ऐसी मेहमान नवाजी धन्य है।

मुझे आशा है कि इस अंक के माध्यम से पाठक, हमारे समय के महत्वपूर्ण अनुवादक, कथाकार, कवि, भाषाविद् एवं बेहतरीन इंसान के व्यक्तित्व और कृतित्व के सागर की कुछ बूँदों से परिचित हो पाएंगें। यह अंक यदि दामोदर खड़से को और जानने को प्रेरित कर पाया तो श्रम सार्थक मान लूंगा।

❑❑

समाचार पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाता है।

1. **प्रकाशन का स्थान** : सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. **प्रकाशन का समय काल** : त्रैमासिक

3. **मुद्रक का नाम** : बालाजी ऑफसेट,

   राष्ट्रीयता : भारतीय

   एड्रेस : (न्यू–एम–28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032

4. **प्रकाशन का नाम** : डॉ. संजीव कुमार

   राष्ट्रीयता : भारतीय

   एड्रेस : सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. **सम्पादक का नाम** : डॉ. संजीव कुमार

   राष्ट्रीयता : भारतीय

   एड्रेस : सी–122, सेक्टर–19, नोएडा–201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति ओर साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

   मैं डॉ. संजीव कुमार, एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।